जय रजनीश हरे......

ज्ञान भरी गंगा के तट से, जिज्ञासाओं की तलछट से,
बोध जहाँ पर मिला बुद्ध को, कृष्ण अजय जिस वंशीवट से,
'आत्मज्ञान' की अमर शिला पर, ज्ञान जहाँ ठहरे,
जय रजनीश हरे ॥

कुण्डलिनी का हुआ जागरण, वहां सत्य साक्षात मिल गया,
ईश्वरमय काया का कण-कण, अंतर्मन शून्य हो गया,
जहां तृप्त हो गयी कामना, ध्यान वहां ठहरे,
जय रजनीश हरे ॥

संपूरण जब हुई साधना, तब संयम सम्मान बन गया,
जहां ज्ञान का हुआ परीक्षण, मानव वह भगवान बन गया,
हर मर्यादित तीर्थंकर का, योग जहां ठहरे,
जय रजनीश हरे ॥

वर्गीकृत समाज है लेकिन, मानव एक वहां होता है,
जहां धर्म की ठेकेदारी, ईश्वर एक वहां होता है,
ये रजनीश शिला है जिस पर, सभी धर्म ठहरे,
जय रजनीश हरे ॥

ओ दुनियां के लोगो तुमने, ईसा को शूली पर टांगा,
मीरा को विष प्याला देकर, गांधी से लोहू को मांगा,
महावीर सा वैरागी मन, आज कहां ठहरे,
जय रजनीश हरे ॥

• श्री ब्रजेश माधव
जबलपुर

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक
संकलन पत्रिका

अप्रैल १९७३

युक्रांद

वर्ष – ४ अंक – १९ : २०

मूल्य एक प्रति : १·०० रु.
" वार्षिक : १२·०० रु.

युक्रान्द

अप्रैल '७३

– मानसेवी सम्पादक मण्डल –

अरविन्द कुमार

सुश्री डा. उर्मिला * 'आकुल' राजेन्द्र

आलोक पाण्डे

व्यवस्थापक : स्वामी धर्म सरस्वती

अनुक्रमणिका

कण-कण अमृत	३	भगवान श्री के बोध वचन
प्रेम और अहंकार	४	बोध-कथा
हम और हमारा पागलपन	५	डॉ. उर्मिला, पी-एच.डी.
कृष्ण और गीता (अध्याय ११ का २५वां एवं २६वां श्लोक)	६	संकलन— स्वामी धर्म सरस्वती, जबलपुर
मिलें मुल्ला नसरुद्दीन से	१५	
महावीर मेरी दृष्टि में	१८	संक्षिप्त सं. : आकुल राजेन्द्र
बोध-सूत्र	२३	
ईश्वर है या नहीं है	२५	सं. : स्वामी कृष्ण कबीर, बंबई
माउण्ट आबू शिविर ५ : बिराट भगवत् लीला	५२	स्वामी अगेह भारती, जबलपुर

गीत : काव्य

जय रजनीश हरे	क	श्री ब्रजेश माधव, जबलपुर
फूट जाय अमृत का झरना	ख र	स्वामी योग प्रीतम, भीलवाड़ा
मैं एक वृक्ष हूं	१७	डॉ. किशोर काबरा, अहमदाबाद
तेरो गुन	१८	स्वामी अगेह भारती, जबलपुर
हुंकार	२४	अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र', बिनेकी, सिवनी

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.

मुद्रक : प्रबोध प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957 P.P.

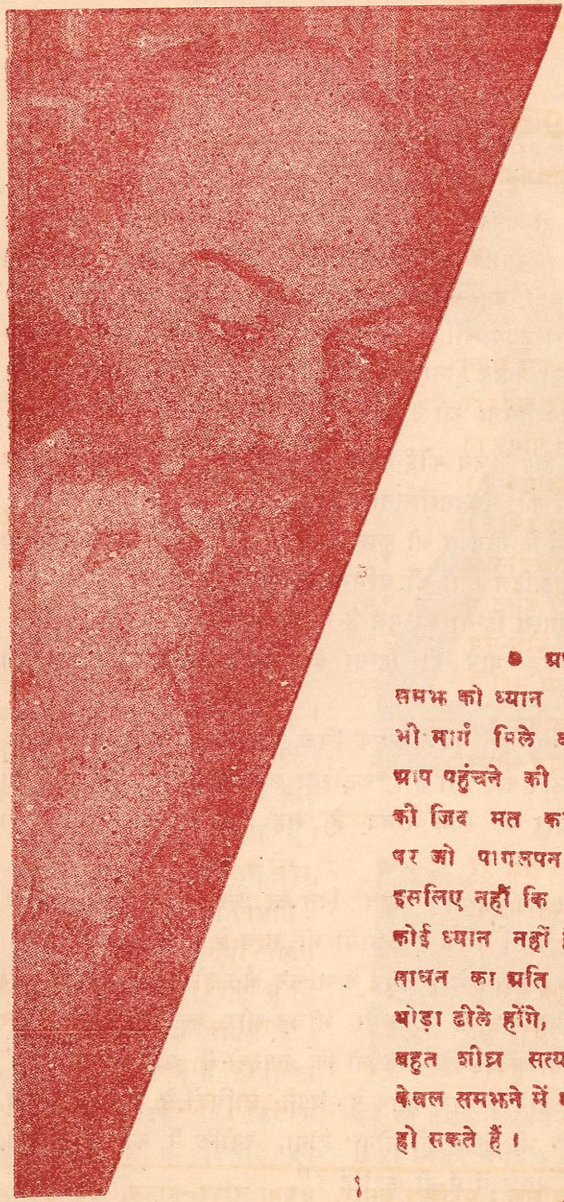

● अपने व्यक्तित्व की समझ को ध्यान में लेना और जहां भी मार्ग मिले वहां से चले जाना आप पहुंचने की फिक्र करना, द्वार की जिद मत करना। धर्म के नाम पर जो पागलपन खड़ा हुआ है वह इसलिए नहीं कि आपको मंजिल का कोई ध्यान नहीं है, ध्यान है, मगर साधन का अति आग्रह है इस पर थोड़ा ढीले होंगे, मुक्त होंगे तो आप बहुत शीघ्र सत्य की दृष्टि को न केवल समझने में बल्कि जीने में समर्थ हो सकते हैं।

बोधकथाएं

प्रेम और अहंकार

अहंकार हृदय को पाषाण बना देता है। जीवन में जो भी सत्य है, शिव है, सुन्दर है, वह उस सबकी मृत्यु है। इसीलिये ही अहंकार के अतिरिक्त परमात्मा के मार्ग में कोई बाधा नहीं। क्योंकि पाषाण हृदय प्रेम को कैसे जानेगा? और जहां प्रेम नहीं, वहां परमात्मा कहाँ? प्रेम के लिए तो सरल और विनम्र हृदय चाहिये—सरल और संवेदनशील। और अहंकार जितना प्रगाढ़ होता है, उतना ही हृदय अपनी सरलता और संवेदनशीलता खो देता है।

"धर्म क्या है?" जब कोई मुझसे पूछता है तो मैं कहता हूं: "हृदय की सरलता—हृदय की संवेदनशीलता।"

लेकिन, धर्म के नाम से जो कुछ प्रचलित है, वह तो अहंकार के ही बहुत से सूक्ष्म और जटिल रूपों की अभिव्यक्ति है।

अहंकार समस्त हिन्सा का मूल है।

"मैं हूं"—यह भाव ही हिन्सा है। फिर "मैं कुछ हूं" यह तो अतिहिन्सा है।

सत्य को, सौन्दर्य को हिन्सक चित्त नहीं पा सकता है। क्योंकि, हिन्सा स्वयं को कठोर कर देती है। कठोरता का अर्थ है, स्वयं के द्वारों का बंद हो जाना। और जो स्वयं में बंद है, वह सर्व से कैसे संबंधित हो सकता है?

एक फकीर था: हसन। बहुत दिन का भूखा, वह एक गाँव के बाहर जाकर ठहरा था। उसके कुछ साथी भी साथ थे। वे भी लम्बी यात्रा से थके-माँदे और भूखे-प्यासे थे। और वे जाकर जैसे ही उस खंडहर में ठहरे थे कि एक अपरिचित व्यक्ति बहुत सा भोजन और फल लेकर आया और बोला: "यह क्षुद्र-सी भेंट उनके लिये जो कि तपस्वी हैं और संन्यासी हैं।" उस व्यक्ति के चले जाने के बाद हसन ने अपने साथियों से कहा: "मित्रो, मुझे आज की रात्रि भी भूखा ही सोना होगा, क्योंकि मैं कहाँ हूं तपस्वी, कहाँ हूं संन्यासी? असल में मैं ही कहाँ हूं?"

"मैं नहीं हूं"—इसे जो जान लेते हैं, वे परमात्मा को जान लेते हैं।

"मैं नहीं हूं"—इसे जो पा लेते हैं, वे परमात्मा को पा लेते हैं।"

हम और हमारा पागलपन

प्रश्न : भीतर जाने में यदि कोई पागल हो जाए तो क्या करना चाहिए ?

भगवान श्री :

मनुष्य जब तक बाहर है तब तक ही पागल होता है। किन्तु ऐसा हो सकता है कि भीतर गया हुआ आदमी दूसरों को पागल मालूम हो। किन्तु भीतर जानेवाला आदमी पागल नहीं होता है। लेकिन बाहर की भीड़ को पागल दिखाई दे सकता है। सुकरात हमें पागल ही मालूम पड़ा, नहीं तो हम उसे जहर क्यों पिलाते ? वस्तुतः भीतर गया आदमी पागल होता नहीं है। तथ्य तो यह है कि हम सब करीब-करीब पागल हैं। लेकिन हमारे पागलपन में डिग्री का फर्क है। एक आदमी जब अधिक पागल हो जाता है तो दिखाई देने लगता है। जब तक हम नार्मल पागल रहते हैं तब तक हमें पता ही नहीं चलता। अगर हम थोड़ी खोजबीन

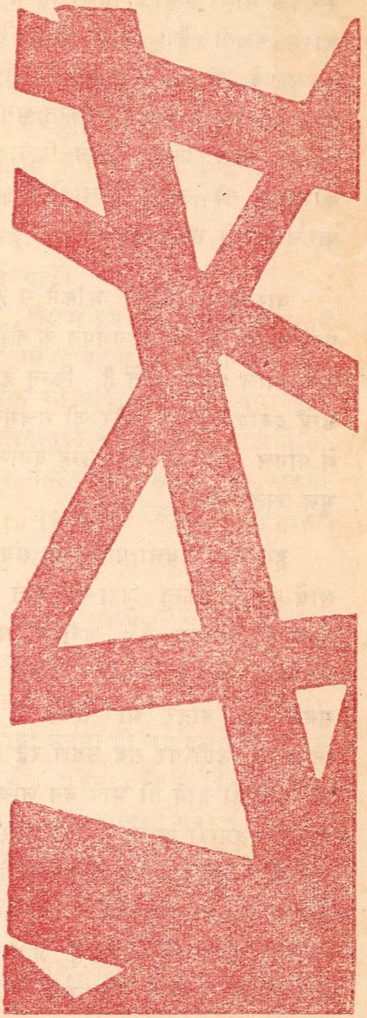

करें तो हमें पागलपन के लक्षण अपने में ही मिलने लगेंगे। कभी एकान्त में आधा घण्टा बैठकर एक कागज पर वह सब लिखें जो आपके मन में चल रहा है, तो आपको हैरानी होगी देख

कर कि भीतर कैसी विचित्र विचार-धारा चलती है। अगर उसे कोई दूसरा पढ़े तो वह यही समझेगा कि आप अवश्य पागल हैं, किन्तु अगर वह भी इसी प्रकार अपने विचारों को लिखे तो उसके विचारों में भी पागलपन की झलक मिलेगी।

वास्तव में भीतर झाँकने से ही पता चलता है कि पागलपन के कैसे-कैसे ख्याल आते रहते हैं, किन्तु हम उन्हें दबाये रहते हैं और जो सचमुच में पागल होता है वह उन्हें दबाना भूल जाता है।

हम लोग संयमी पागल हैं, संयम साधे हुए हैं किन्तु जरा-सी बात में संयम टूट सकता है। जरा में सब गड़बड़ हो सकता है और भीतर के सब भाव बाहर आ सकते हैं। निन्यानबे डिग्री पर सब उबल रहे हैं, सौ डिग्री हो जाये तो भाप बन जाये। यह जो हमारी हालत है, वह स्वस्थ नहीं है। हम जितना भीतर जायेंगे उतना स्वास्थ्य के करीब पहुंचेंगे, क्योंकि भीतर वह स्रोत है जहाँ से जीवन की धारायें निकलती हैं। आपने देखा होगा कि पागल की नींद चली जाती है और जिसकी नींद चली जाये उसके पागल होने का डर पैदा हो जाता है। क्यों? क्योंकि नींद में ही हम थोड़ा-सा भीतर जाते हैं। जीवन में जागते हुए तो कभी भीतर नहीं जाते। जब गहरी नींद होती है तो भीतर चले जाते हैं और भीतर से जीवन के जो रसस्रोत हैं उनको लेके वापस लौट आते हैं। इसीलिए सुबह हम ताजा लगते हैं। सुबह की ताजगी तो रात भीतर उतर जाने का फल है। अगर रात भर नींद न आये तो सुबह हम पागल जैसे ही हो जाते हैं।

अमरीका में कई ऐसी लेबारोटरी हैं, जिनमें लोगों की नींद पर प्रयोग किए जा रहे हैं। जो आदमी रात को सपने देखता है, वह सुबह उठकर कहता है कि ताजगी नहीं आयी। बहुत कम ऐसे लोग हैं जिनके सपने थोड़ी बहुत देर के लिए बन्द होते हैं और जितनी देर सपना बन्द होता है उतनी देर तक नीचे डुबकी लग जाती है। अब तो मशीनें जाँच लेती हैं कि आदमी नींद में कितना गहरा गया। सपना चलता है तो ग्राफ ऊपर बनता है। गहरा जाता है तो नीचे। क्योंकि जो खोपड़ी की नसें हैं वे सपने में तेजी से चलती हैं। जब गहरी नींद आती है तो गति बन्द हो जाती है। उन लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि **जो आदमी जितनी गहरी नींद में चला जाता है पागल होने की संभावना उसकी उतनी कम हो जाती है।** और जो आदमी नींद में ऊपर ही ऊपर घूमता रहता है वह कभी भी पागल हो सकता है। तो नींद

तो नींद में तो हम बेहोश होकर भीतर जाते हैं, किंतु धर्म हमें वह प्रक्रिया सिखाता है जिससे हम होशपूर्वक भीतर जा सकते हैं ।

भीतर जाने से कभी कोई पागल नहीं होता । यह सच है कि जब कोई भीतर जाना शुरू करता है तो उसको भी यही लगता है कि कहीं मैं पागल न हो जाऊं । इसका कारण केवल यही है कि उसने पहले भीतर कभी झांका नहीं । पागल तो हम हैं किन्तु, क्योंकि भीतर कभी झांका नहीं, इसलिए हमें पता नहीं चलता ।

ध्यान करने से पहली बार अपने भीतर के पागलपन की ओर ध्यान जाता है । पागलपन तो ध्यान से ही मिट सकता है । जुंग ने सबसे अधिक पागलों का इलाज किया है । उसने लिखा है कि मैंने यह अनुभव किया है कि जितने लोग पागल हो गए हैं उनमें वे लोग अधिक हैं जिनका धार्मिक साधना से कोई संबंध नहीं रहा । पश्चिम में जोर से पागलपन बढ़ा है । पूरब में पागलपन थोड़ा कम है । अमरीका में तो यह सामान्य बीमारी हो गई है । क्यों ? इसलिए कि भीतर जाने के हमने सब द्वार छोड़ दिये हैं । नींद का एक द्वार था जो कि नितान्त प्राकृतिक था, वह भी छोड़ दिया है । बिजली पैदा हो गई तो अब रात को सोने की जरूरत नहीं रही । रात भर नाचो-कूदो, गाओ, बजाओ तो दिन भर के तनाव के साथ रात भर का तनाव जुड़ जाएगा ।

जितने हम भीतर जाते हैं उतने ही हम जीवन के मूल स्रोत से जुड़कर शक्ति को प्राप्त करते हैं । अगर कोई भीतर जाने की यह कला सीख ले तो दिन में कई बार भीतर जा सकता है । एक डुबकी लेकर ताजा होकर वह बाहर आ जायेगा ।

जीवन का मूल स्रोत भीतर है । बाहर तो केवल विस्तार है, गहराई भीतर है । जो जितना अपने भीतर जायेगा उतना ही वह दूसरे के भीतर भी देख सकेगा । जिस दिन आपका चेहरा नहीं, आपकी गहराई दिखाई पड़ती है, जिस दिन आपका शरीर नहीं, आप दिखाई पड़ते हैं उस दिन यह सारा जगत परमात्मा हो जाता है । उस दिन सब ओर परमात्मा की गहराई में आन्दोलित होता मालूम पड़ता है । **क्योंकि यह जो प्रतीति है परम आनन्द की, परम अमृत की, यह उस अनुभव का फल है जो भीतर जाकर प्राप्त होता है और जहां पहुंच**

कर यह मालूम होता है कि मृत्यु झूठी है। भीतर पहुंचकर ही पाने की शुरुआत होती है और द्वार खुलता है अनन्त प्रकाश का, अनन्त जीवन का, अनन्त आनन्द का।

● डा० उर्मिला, पी-एच.डी.
जबलपुर

भगवान श्री रजनीश की अमृत-वाणी की एक नवीन
हिन्दी मासिक पत्रिका का

—: शुभारंभ :—

★ आ नं द ★

संपादक : स्वामी चैतन्य कीर्ति
२७३, माडल ग्राम, लुधियाना, (पंजाब)
मूल्य—एक प्रति : 1 रुपया, वार्षिक : 10 रुपये
सदस्यता लेकर लाभ उठावें।

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित !

नई साज सज्जा में
भगवान रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक
त्रैमासिक संकलन पत्रिका

ज्योति शिखा

संपादन : मा योग क्रांति, स्वामी कृष्ण कबीर
वार्षिक : मूल्य ८ रु.
संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र,
३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन,
मस्जिद बंदर रोड, बम्बई-९
Phone : 327618

कृष्ण और गीता

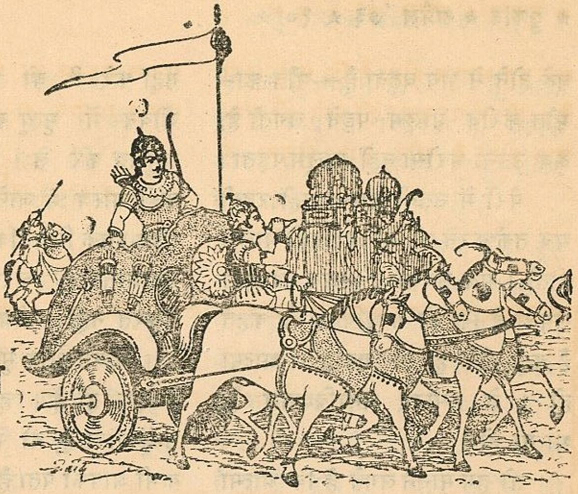

भगवान श्री द्वारा गीता अध्याय ११ के २५ वें एवं २६ वें श्लोक के अंश को यहां प्रस्तुत किया गया है। इसे मात्र हम समझ पायें, तो सारा और समझना अपने से हो जाता है।

—सं०

भगवान श्री :

हम में से अधिक लोग आत्मा को अमर इसीलिये कहते हैं कि इसके सिवाय बचने का और कोई उपाय नहीं दिखता। उन्हें कुछ पता नहीं कि आत्मा अमर है भी ? लेकिन वे फिर भी माने चले जाते हैं कि आत्मा अमर है—क्यों ?—भय है मृत्यु का शरीर जायगा यह पक्का है—कितना ही उपाय करो। तो बचने का एक ही उपाय है कि आत्मा अमर है। इसलिये आदमी जैसे जैसे बूढ़ा होता जाता है, आत्मा में भरोसा करने लगता है।

जवान आदमी कहता है—पता नहीं है, नहीं हो सकती, न भी हो, यह आदमी अभी समय से बोल रहा है। अभी जवानी का जोश है इसलिये बोल रहा है। थोड़े हाथ पैर ढीले पड़ने दें, भरोसा आने लगेगा, थोड़ा मौत करीब आने दें, दाँत गिरने दें, भरोसा आने लगेगा। क्यों ? इसलिये नहीं कि अनुभव हुआ है। कोई बूढ़े होने से अनुभव नहीं मिलता। यदि बूढ़े होने से अनुभव मिलता तो दुनिया में सारे लोग—कितने ही लोग बूढ़े हो चुके--अनुभव ही अनुभव होता—कोई अनुभव नहीं—लेकिन

बूढ़े होने से भय बढ़ता है—मौत का–मौत करीब मालूम पड़ने लगती है, अब उतना भरोसा नहीं मालूम पड़ता।

पैरों में उतनी ताकत नहीं रहती अब तर्क करने की सुविधा नहीं मालूम होती। अब लगता है—अब तो ऐसा लगता है कि जो अन्धविश्वासी कहते हैं वही ठीक हो तो अच्छा। आत्मा हो। ये हमारा अन्धविश्वास है, आत्मा हो।

तो हम मानने लगते हैं कि आत्मा है। जायें मस्जिद में, चर्च में, मंदिर में—बूढ़े लोग और पुरुषों से भी ज्यादा बूढ़ी स्त्रियां वहाँ इकट्ठी होती हैं क्योंकि पुरुष बूढ़ा भी हो जाय तो अपना पुरुषत्व—अकड़ कायम रखता है। स्त्रियां और भी जल्दी घबड़ा जाती हैं और मंदिर की तरफ चल पड़ती हैं घबड़ाहट की वजह से—भय की वजह से। आदमी मान लेता है आत्मा अमर है। अनुभव की वजह से नहीं—क्योंकि अनुभव कुछ और बात है और अनुभव तो उसको होता है जो मृत्यु के भय को छोड़ देता है। और जीवन की वासना छोड़ देता है।

हम तो मृत्यु के भय से आत्मा अमर है मान लेते हैं। हमें कभी पता नहीं चलेगा कि आत्मा है भी। यह उसी को पता चलेगा जो मृत्यु का भय नहीं करता और जीवन का मोह नहीं करता। कौन है? जो मृत्यु का भय नहीं करे और जीवन का मोह नहीं करे? वो वही व्यक्ति—जो जीवन में मृत्यु को देख ले और अनुभव कर ले। और इसके लिये कहीं शास्त्र में जाने की जरूरत नहीं और इसके लिये किसी महापुरुष, या महाज्ञानी के चरणों में बैठने की जरूरत नहीं। जीवन ही काफी है।

जीवन और मृत्यु दो कहां हैं? वे एक ही हैं। हमने अपने मोह से उन्हें बांटा है, दो में, वे एक ही हैं। कभी आपको पता है—किस दिन जन्म समाप्त होता है और मृत्यु शुरू होती है और किस सीमा पर जीवन का समापन होता है और मृत्यु का आगमन होता है—कहीं कोई विभाजन नहीं है, कोई बाध्यता—कोई कम्पार्टमेंट, कोई खण्ड खण्ड बांटने का उपाय नहीं है।

जीवन और मृत्यु एक ही चीज के दो नाम मालूम पड़ते हैं—एक ही घटना है। दो शब्द मालूम पड़ते हैं—एक छोर जीवन, दूसरा छोर मृत्यु। तो हम परमात्मा का रूप बनाते हैं मोहक—सुन्दर, हमने जो नाम रखे हैं वे मोहक हैं, हमारे मन को जो लुभायें। लेकिन जो दूसरा हिस्सा है—परमात्मा का—वह काट रखा है। अर्जुन भी भयभीत हुआ—इसलिये नहीं कि परमात्मा का भयंकर रूप है बल्कि इसलिये कि आज तक उसने सोचा ही नहीं था कभी—यह कभी धारणा ही नहीं

बनी थी मन में कि यह भयंकर रूप परमात्मा का है। हम सोचते हैं यमराज को—भैंसे पर बैठे हुए—विकराल दांतों वाला आदमी—सींगों वाला, लेकिन हम यमराज को कभी परमात्मा के साथ एक करके नहीं देखते, यमराज अलग ही मालूम पड़ता है, उसका डिपार्टमेंट वह सब अलग विभाग है। परमात्मा से हम उसे नहीं जोड़ते हैं। क्योंकि मृत्यु परमात्मा से आती है।

ये गीता के सूत्र बड़े कीमती हैं, इन्हें जरा समझ लें, यमराज कहीं अलग नहीं—परमात्मा के मुंह में ही है। और यमराज कहीं हाथी घोड़े पर बैठकर नहीं आने वाला है—किसी भैंसे पर सवार होकर नहीं। परमात्मा के दांत—में ही यमराज है। ये देखकर अर्जुन घबड़ा गया वह कह रहा है कि सारे लोग व्याकुल हो रहे हैं, मैं भी व्याकुल हो रहा हूं क्योंकि हे विष्णु आकाश के साथ स्पर्श किये हुए दैवित्यमान अनेक रूपों से युक्त तथा सहलाते हुए मुख और प्रकाशवान नेत्रों से युक्त आपको देखकर, भयभीत अंत.-करण वाला मैं धीरज और शांति को नहीं प्राप्त होता हूं। आपकी वजह से मैं भयभीत हो रहा हूं—ऐसा नहीं, भयभीत अंत.करण वाला मैं—मैं भय-भीत अंतःकरण वाला हूं इसीलिये भयभीत हो रहा हूं। आपके कारण मैं भयभीत नहीं हो रहा हूं, आप तो विशाल हैं, महान हैं, महर्षि हैं, महा-देव हैं, आप तो परमेश्वर हैं, आपके कारण भयभीत नहीं हो रहा हूं लेकिन मेरा अंतःकरण भयवाला है।

इसे हम थोड़ा समझ लें। हम सबके पास अंत करण भय वाला है, ये थोड़ा गहन है, और आपको भी पता नहीं कि आपका अंतःकरण क्या है, कांशियस क्या है? आप चोरी करने से डरते हैं, भीतर कोई कहता है चोरी बुरी है। आप पड़ोसी की स्त्री भगा ले जाने से बचते हैं, भीतर कोई कहता है ये बुरी बात है। किसी की हत्या करने से भय लगता है, मन में भीतर कोई कहता है—हत्या पाप है—हिन्सा बुरी है, कौन कहता है? आपके भीतर जो ये है, यह आपका अंतःकरण है, परन्तु ये अंतःकरण वास्तविक नहीं है, क्योंकि वास्तविक अंतःकरण भय का कारण नहीं—वास्तविक अंत.करण ज्ञान का कारण है। ये अंतःकरण तो "सोशियल-प्रोडक्सन" है। समाज के द्वारा पैदा किया गया है। यह समाज बच्चा पैदा होते ही बच्चे में अंतःकरण पैदा करने में लग जाता है क्योंकि इस समाज को भय है कि यदि बच्चे को ऐसा ही छोड़ दिया जाय तो वह पशु जैसा हो जावेगा और इस भय में सचाई है अगर बच्चे को कुछ भी न कहा जाय तो वह पशु जैसा हो जावेगा, तो समाज उसे बताना शुरू करता है, वो

कहता है कि अगर तुम ऐसा करोगे तो दंड पाओगे, अगर तुम ऐसा करोगे तो पुरस्कार पाओगे, अगर तुम ऐसा करोगे तो माता-पिता प्रसन्न होंगे, अगर तुम ऐसा करोगे तो दुखी होवेंगे, नाराज होवेंगे, कष्ट पावेंगे।

धीरे-धीरे हम बच्चे में भय और लोभ के आधार पर अंतःकरण पैदा करते हैं। हम कहते रहते हैं तुम ऐसा करते रहते हो तो माँ प्रसन्न है, पिता प्रसन्न है, सब लोग प्रसन्न हैं और अगर तुम ऐसा करते हो तो लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे और सब तुम्हें निन्दित कर रहे हैं तो बच्चे को धीरे-धीरे समझ आने लगती है कि किस चीज से डरें। जिस-जिस से माँ-बाप डराते हैं वह उनसे डरने लगता है, भय गहरे में बैठ जाता है—अंतःकरण बन जाता है। इसलिए हर समाज का अंतःकरण अलग-अलग होता है—हिन्दू का अलग, मुसलमान का अलग, इसाई का अलग, जैन का अलग।

आत्मा अलग नहीं होती, अंतःकरण अलग-अलग होता है। अब जो जैन है वह मांसाहार नहीं कर सकता, क्योंकि बचपन से उसे कहा गया है कि यह महापाप है। अब अगर मांस उसके सामने आ जाय तो भीतर उसके हाथ-पैर काँपने लगेंगे इसलिए नहीं कि मांस को देखकर काँपते हैं, क्योंकि दूसरा मुसलमान कह रहा है कि उसके नहीं कँप रहे हैं। मांस में कँपाने वाली कोई बात नहीं है—कँप रहे हैं अंतःकरण के कारण। और इसी बच्चे को एक मांसाहारी के घर में रखा जाय तो इसके भी नहीं कँपेंगे और एक मांसाहारी बच्चे को गैर मांसाहारी के घर में रखा जाय तो उसके भी कपेंगे। वह जो अंतःकरण बचपन से पैदा किया यह भय कि क्या गलत है वो नहीं करना, उसको देखकर ये कँप रहा है—ये वास्तविक अंतःकरण नहीं है, ये सामाजिक व्यवस्था है। इसलिये एक समाज में अगर किसी की चचेरी बहिन से शादी होती है तो कोई अड़चन नहीं—चचेरी बहिन से शादी हो जाती है--कोई अड़चन नहीं। और दूसरे समाज में उसी के पास में चचेरी बहिन से शादी की बात ही करना पाप है। ऐसा हो सकता है कोई सोच भी नहीं सकता कि बहिन से भी प्रेम कर सकते हैं। उसको पत्नी बना सकते हैं ये तो बिलकुल कल्पना के बाहर है। ये अंतःकरण है। ये जब तक दुनिया में बहुत से समाज हैं, बहुत से संप्रदाय हैं तब तक बहुत से अंतःकरण होंगे और इन अंतःकरण के कारण बड़ा उपद्रव है और दुनिया तब तक एक नहीं हो सकती जब तक हम एक यूनीवर्सल कांसेस्नेस पैदा न कर लें तब तक दुनिया एक नहीं हो सकती, हम कितना ही सिर पटकें--हिन्दू-मुसलिम भाई-भाई, लाख लोग सिर पटकें कि हिन्दी-चीनी भाई-भाई ये

असम्भव है क्योंकि भाई-भाई तब तक नहीं हो सकते जब तक भीतर के अंतःकरण भिन्न हैं, तब तक ऊपरी होगा धोखा, दिखावा, मौके पर सब कलई खुल जावेगी और दुश्मन बाहर निकल आवेगा। क्योंकि भीतर जो अंतःकरण बैठा है वह भेद निर्मित कर रहा है।

अर्जुन कहता है कि मेरे अँतःकरण के कारण मैं भयभीत हो रहा हूं, आपके कारण नहीं—वह ठीक कह रहा है—ये उसका निरीक्षण बिलकुल ठीक है। अंतःकरण में आज तक उसने यही जाना है कि परमात्मा शुभ है, सुन्दर है, प्रीतिकर है, आनन्दपूर्ण है, सच्चिदानंद है, आनन्ददायक है अब तक उसने यही जाना है।

मृत्यु भी परमात्मा है ये उसने न सुना है, न जाना है। बचपन से बना हुआ अन्तःकरण परमात्मा की एक प्रतिमा लिये है। ये प्रतिमा खंडित हो रही है इसलिये अर्जुन व्यथित है। और न केवल वह यह कहता है—मैं व्यथित हूं, सारे लोग व्यथित हैं। ये रूप बहुत घबड़ाने वाला है। और हे भगवन आपके विकराल रूप, प्रलय के समान प्रज्जवलित अग्नि के समान मुखों को देखकर मैं दिशाओं को नहीं जानता हूं और सुख को भी प्राप्त नहीं होता हूं। दिशा भ्रांति हो गई है, अब मुझे पता नहीं उत्तर कहाँ है, दक्षिण कहां है पूरब कहाँ है। वो यह कह रहा है कि अब मुझे समझ में नहीं आ रहा है मेरा सिर घूम रहा है दिशाएँ पहिचान में नहीं आती हैं कि क्या कहां है। ये तुम्हारा रूप देखकर दिशाएँ भ्रांति हो गई, मेरा पथ खो गया, मेरा मार्ग धुएं से भर गया और जरा भी सुख को प्राप्त नहीं हो रहा हूं। वह कह रहा है—आप भगवान हैं—आप परमेश्वर हैं। सिर्फ आपका यह रूप देखकर मैं जरा भी सुख को प्राप्त नहीं हो रहा हूं। मुझे जरा भी सहारा सुख के लिये आपकी इस स्थिति को देखकर नहीं मिलता है। इसलिये हे देव! हे जगन्नाथ आप होवें। वह कह रहा है आप कृपा करें और ये रूप तिरोहित कर लें और वो प्रसन्न वदन वो मुस्कराता हुआ आनन्दित रूप जो था उसमें वापिस लौट आवें।

आदमी का मन आखरी—अंत तक भी परमात्मा पर अपने को थोपना चाहता है। अन्त तक भी परमात्मा को वह जैसा है वैसा स्वीकार करने को तैयार नहीं है—अंत तक।

साधक की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि वो परमात्मा पर भी अपने को थोपता है और तब तक सिद्ध नहीं हो पाता जब तक परमात्मा जैसा भी हो उसको वैसा ही स्वीकार कर लेने की स्थिति में न आ जावे। अभी अर्जुन थोड़ा सा विनम्र निवेदन कर

रहा है कि प्रसन्न हो जावें, हटा लें यह प्रज्जवलित प्रलयकारी रूप—अलग कर लें, मुख पर थोड़ी मुस्कान ले आवें। आपके चेहरे पर हंसी को देखकर—आनन्द को देखकर मुझे सुख होगा।

इसे ख्याल में ले लें। जब तक आप सोचते हैं परमात्मा ऐसा होना चाहिये, जब तक आपकी परमात्मा की कोई धारणा है तब तक आप परमात्मा को नहीं जान पावेंगे। तब तक जो भी आप जानेंगे वह पर्दा होगा। यदि आपको परमात्मा को ही जानना है तो सारी धारणा आपको अलग कर देनी होगी। हिन्दू, मुसलमान, इसाई, बौद्ध सब हटा देने होंगे। आपको निपट शून्य की तरह हो जाने के लिये खड़े हो जाना होगा।

अपने अंतःकरण, अपने भरोसे अपने विश्वास अपनी दृष्टि सब हटा देनी होगी और जैसा भी हो परमात्मा विकराल हो, मृत्यु हो, अमृत हो जो भी हो उसके लिये राजी हो जाना होगा। जब भी कोई व्यक्ति ऐसी स्थिति में राजी हो जाता है तो परमात्मा के दोनों रूप खो जाते हैं। उस अनुभव को हमने 'ब्रह्म-अनुभव' कहा है। तब तक हमें ईश्वर का अनुभव कहां है ? इस फर्क को थोड़ा समझ लें। ईश्वर का अनुभव जब है तब दोनों रूप दिखाई नहीं पड़ते। दोनों में चुनाव नहीं रह जाता। उस समय दोनों दिखाई नहीं पड़ते, उस दिन रह जाता है—ब्रह्म।

भारत ने बड़ी हिम्मत की बात कही। भारत में ईश्वर को भी माया का हिस्सा कहा है। ये सुनकर आपको कठिनाई होगी—भारत कहता है ईश्वर भी माया का हिस्सा है—ईश्वर का अनुभव भी माया का हिस्सा है क्योंकि ईश्वर के भी रूप हैं और ईश्वर के साथ भी हमारा लगाव अच्छा—बुरा—ऐसा हो—ऐसा न हो। भक्त भगवान को निर्मित करते रहते हैं, मन्दिरों में ही नहीं—मंदिरों में तो वे सजाये ही रहते हैं, क्योंकि भगवान तो अदृश्य है, कुछ कर नहीं सकता, जो तुम करना चाहो करो।

लेकिन यह अर्जुन—ठेठ भगवान के सामने खड़े होकर कह रहा है-ऐसा अच्छा होगा—मुझे सुख मिलेगा, आप जरा प्रसन्न हो जावें, वह रूप हटा लें। ये क्या कह रहा है—वो यह कह रहा है कि अभी भी केन्द्र मैं हूं, मेरा सुख है। आप ऐसे हों जिसमें मुझे सुख मिले।

"मैं ऐसा हो जाऊं जिससे आप आनंदित हों" ऐसा नहीं है, "मैं आनंदित होऊँ आप ऐसे हो जावें" **ये आखिरी मन है**। और तब तक शेष रहता है जब तक हम माया की आखिरी परिधि ईश्वर को पार नहीं कर लेते। शंकर ने कहा है कि ईश्वर माया का हिस्सा है। ये ईश्वर

के अनुभव का भी अन्तिम अनुभव मत समझ लेना, यहीं कठिनाई खड़ी हो जाती है। इसाई, इस्लाम, शंकर की बात से व्यथित हो जाते हैं। हिन्दू साधारण चित्त भी व्यथित हो जाता है, ईश्वर हमारे लिये लगता है आखिरी है। भारत के मनीषियों के लिये ईश्वर आखिरी नहीं है, आखिरी तो वह स्थिति है जहां कहने को इतना भी शेष नहीं रह जाता कि आनंद है कि दुख है कि मृत्यु है कि जीवन है—सब भेद गिर जाते हैं। सारी रेखायें खो जाती हैं।

● संकलन : *स्वामी धर्म सरस्वती*, जबलपुर

मिलें

मुल्ला नसरुद्दीन

से—

अज्ञानी अज्ञानियों को मार्ग दिखाते रहते हैं।

अज्ञान का लम्बा अनुभव ही जैसे उनके ज्ञानी होने का मजबूत आधार बन जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने गांव में सभी कुछ था। ज्ञानी, कबि, लेखक, दार्शनिक, धर्मगुरु, शिक्षक, वैद्य इत्यादि।

एक क्षय रोग का रोगी उसके पास गया।

मुल्ला ने उसकी परीक्षा करके कहा : तुम्हारी बीमारी जल्दी ही अच्छी हो जायेगी। बस थोड़े दिन मेरी दवा करो।

रोगी ने प्रसन्न होकर कहा : मुल्ला, तब तो क्या कहना ! आपको तो इस बीमारी का अच्छा अनुभव है !

नसरुद्दीन यह सुनकर चमक कर बोला : अनुभव के क्या मानी ? अरे भाई ! मुझे खुद ही पच्चीस बरस से यह बीमारी है !

****मैं एक वृक्ष हूं****

जड़ों की उंगलियों में धरती की मिट्टी लपेटे,
डालियों के कंधों पर पूरे आकाश का शून्य उठाये,
अडिग किन्तु सप्राण
मैं देव हूं न यक्ष हूं,
मैं एक वृक्ष हूं।

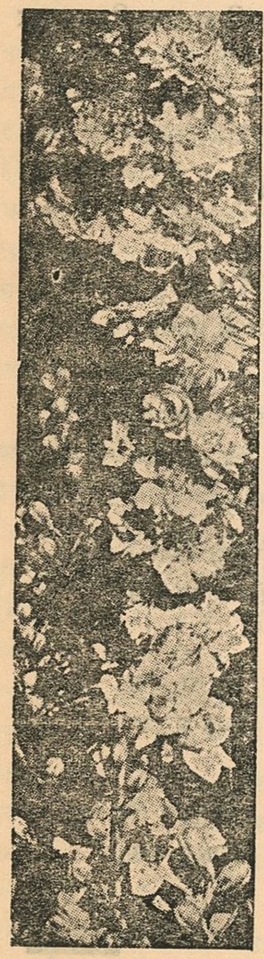

जब तुम
पहले-पहल दिखाई दिये थे
पूर्व के झरोखे में,
उस समय मेरी अभिलाषाओं के प्रतिबिम्ब
छू रहे थे अन्तहीन अन्तरिक्ष।

मेरी काया छोटी थी
किन्तु
मेरी छाया मोटी थी।

अब
तुम्हारी ऊष्मा का साहचर्य पाकर,
तृप्त हो गई मेरी कामनाएं।

जीवन के मध्याह्न तक
सभी वासनाएं संकुचित होकर
समर्पित हो गईं मेरे चरणों में।

पर
जैसे-जैसे ढलती है तुम्हारे यौवन की हरियाली
और
मेरी हरियाली का यौवन,
सभी सोई-छिपी वासनाएं
पुनः फैल रही हैं, विस्तार ले रही हैं।

आतुर हैं
अन्तरिक्ष को अपने बाहुपाश में बाँधने के लिए ।

मुझे ऐसा लगता है--
जीवन के पूर्वार्ध में
अतृप्ति से तृप्ति की ओर जाती हुई वासनाएं
तथा
जीवन के उत्तरार्ध में तृप्ति से अतृप्ति की
आती हुई वासनाएं
समानान्तर हैं ।
पहली में विराट को व्यक्ति में बांधने की चेष्टा है
दूसरी में व्यक्ति को विराट में खोलने की
आतुरता है ।
एक में समर्पण ही जीवन है,
दूसरी में जीवन ही समर्पण है । ●

● डा. किशोर कावरा
अहमदाबाद

तेरो गुन

तेरो गुन रजनीश गावे कौन ।
तेरो गुन भगवन गावे कौन ।।

तुमसे दूरि, समुझि नहिं पावे,
नियरे आवत ही मिटि जावे,
उतरत भीतर-बाहर मौन ।।
तेरो गुन०

महिमा तेरी अजब निराली,
निन्दा-स्तुति सब से खाली,
बरसावत अमरित दिन-रैन ।।
तेरो गुन०

● स्वामी अगेह भारती,
जबलपुर

महावीर मेरी दृष्टि में : भगवान रजनीश

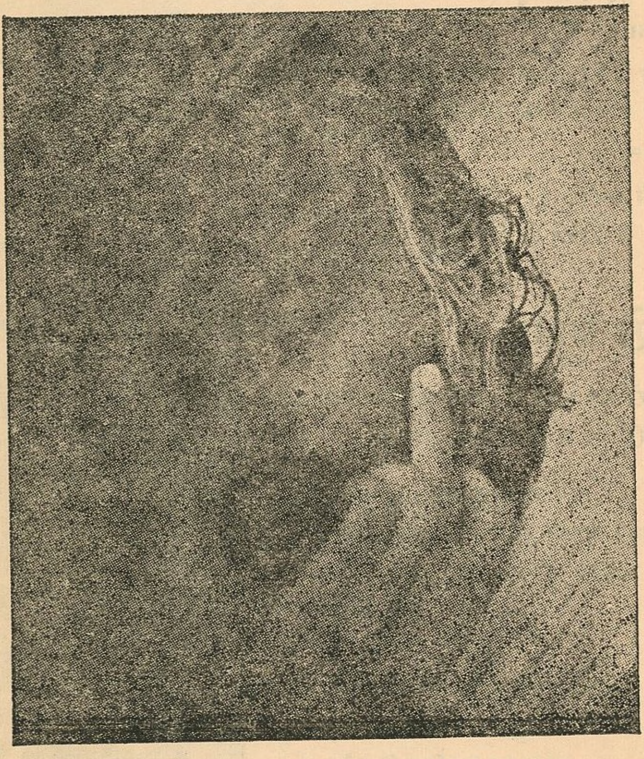

[भगवान महावीर पर भगवान श्री द्वारा १७-९-६९ से २-१०-६९ तक श्रीनगर के पास डल झील स्थित शिविर में दिये गए प्रवचन 'महावीर : मेरी दृष्टि में' नामक पुस्तक में प्रकाशित हो चुके हैं। पाठकों की रुचि एवं माँग को देखते हुए इस अंक से धारावाहिक रूप में ये प्रवचन संक्षिप्त करके प्रकाशित किये जा रहे हैं।]

मैं महावीर का अनुयायी नहीं हूं, प्रेमी हूं; वैसे ही जैसे क्राइस्ट का, कृष्ण का, बुद्ध का, लाओत्से का; और मेरी दृष्टि में अनुयायी कभी भी नहीं समझ पाता। दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं—अनुयायी या विरोधी। न अनुयायी समझ पाता है, न विरोधी ही।

एक और रास्ता भी है— प्रेम का, जिसके अतिरिक्त और किसी रास्ते से कभी किसी को समझ ही नहीं पाते। अनुयायी अनुगमन से बँध जाता है तो विरोधी भी बंध जाता है विरोध के कारण; सिर्फ प्रेमी की एक मुक्ति है। और जो प्रेम बांधता है, वह प्रेम ही नहीं। तो महावीर से प्रेम करने में महावीर से बंधना नहीं होता। महावीर से प्रेम करते हुए ही बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को प्रेम किया जा सकता है; क्योंकि महावीर में जिस चीज को—वह ज्योति को जो उनके कायादीप में प्रकट हुई है—हम प्रेम करते हैं, वह हजार-हजार लोगों में उसी तरह प्रकट हुई है। जो ज्योति से प्रेम करेगा वह दिये से नहीं बंधेगा और जो दिये से बंधेगा उसे ज्योति का कभी भी पता नहीं लगेगा। जो ज्योति को प्रेम करेगा उसे इसकी उसकी ज्योति से कोई प्रयोजन न होगा, वरन् वह तो, जो ज्योतिर्मय है—उसे ही प्रेम करेगा। जब कोई एक ज्योति में बंध जायेगा उसे सर्वत्र सूरज में भी, घर के दिये में भी, चांद-तारों में भी, आग में भी वही ज्योति दिख जायेगी। **लेकिन जहां अनुयायी व्यक्तियों से बंधे हैं वहां विरोधी भी व्यक्तियों से बंधे हैं। प्रेमी भर को व्यक्ति से बंधने की कोई जरूरत नहीं। तो मैं प्रेमी हूं और इसलिए मेरा कोई बंधन नहीं है महावीर से।** और बंधन न हो तो ही समझ हो सकती है—अन्डरस्टैंडिंग हो सकती है।

महावीर को चर्चा के लिये चुनना मात्र बहाना है; जैसे, खूंटी पर कपड़ा टांगने का प्रयोजन होता है, तो खूंटी कोई भी काम दे सकती है, ठीक उसी तरह **ज्योति के स्मरण में महावीर भी काम दे सकते हैं, बुद्ध भी, कृष्ण भी, क्राइस्ट भी। स्मरण उस ज्योति का जो हमारे दिये में भी जल सकती है। स्मरण प्रेम मांगता है, अनुकरण नहीं। महावीर के स्मरण में महावीर का स्मरण नहीं है; बल्कि उस तत्व का स्मरण है जो महावीर में प्रकट हुआ है। और उस तत्व का स्मरण आ जाये तो तत्काल वह आत्म-स्मरण बन जाता है, जो कि वास्तव में सार्थक है। महावीर की पूजा से यह नहीं होता—आत्म-स्मरण नहीं आता; क्योंकि पूजा आत्म-विस्मरण का उपाय है।** अपने को भूलना चाहने वाले अनुयायी, भक्त आदि पूजा में लग जाते हैं; फिर पूजा चाहे किसी की

भी हो, महावीर की, बुद्ध की, क्राइस्ट की—सब खूंटी का काम दे देते हैं।

पूजा, प्रार्थना, अर्चना सब विस्मरण है, स्मरण बहुत और बात है। स्मरण का अर्थ है कि हम महावीर में या किसी में भी, कहीं से भी उस ज्योति को खोज पाएं तो यह सम्भावनाओं का बोध तत्काल हमें अपने प्रति जगा देता है कि जो किसी एक में संभव है, वह फिर मेरी संभावना क्यों न बने ? तब हम पूजा में न जाकर एक अंतर्पीड़ा, एक इनर सफरिंग में उतर जायेंगे। जैसे जले हुए दिये को देखकर एक बुझा हुआ दिया एक आत्मपीड़ा में उतर जाये, उसे अपने ज्योति विहीन अस्तित्व की व्यर्थता का बोध हो और ज्योति की ईषणा जाग्रत हो। मैं सिर्फ अवसर हूं जिसमें ज्योति प्रगट हो सकती है, लेकिन अभी हुई नहीं है। करोड़ बुझे दियों के बीच बुझे दिये को कोई खयाल न आये, किन्तु एक जले हुए दिये के निकट स्मरण आ सकता है। महावीर, या बुद्ध, या कृष्ण का मेरे लिए इससे ज्यादा कोई प्रयोजन नहीं कि उनके जले हुए दिये की लपट एक बार हमारी आँखों तक पहुंच जाये और फिर हम वही आदमी नहीं रह सकते, क्योंकि हमारी भी एक नई संभावना का द्वार खुल जाता है—जो हमें पता ही नहीं था कि हम हो सकते हैं, उसकी प्यास जग जाती है। यह प्यास जग जाये तो कोई भी (महावीर, कृष्ण, बुद्ध आदि) बहाना बनता हो, इससे कोई प्रयोजन नहीं। कई बार ऐसा होता है जिसे लाओत्से में ज्योति दिख सकती है उसे बुद्ध में ज्योति न दिखे। और यह भी हो सकता है कि जिसे महावीर में ज्योति दिख सकती है उसे लाओत्से में ज्योति न दिखे; परन्तु एक बार यदि अपनी ही ज्योति दिख जाये तब तो लाओत्से, बुद्ध का प्रश्न नहीं, सड़क पर चलते साधारण आदमी में भी ज्योति दिखने लगती है—पशु-पक्षी में भी वही ज्योति दिखने लगती है, पत्थर में भी। उसके कारण हैं, क्योंकि व्यक्ति-व्यक्ति के देखने के ढंग, ग्राहकता, रुझान, रुचि आदि में भेद है। एक सुन्दर युवती है, जरूरी नहीं कि सभी को सुन्दर मालूम पड़े।

मजनू को नगर के सम्राट ने पकड़वाया, वह लैला के प्रेम में पागल था। मजनू की पीड़ा का हाल सुना तो उसे बुलाकर राजा ने कहा, लैला में ऐसा क्या है ? बहुत साधारण है, उससे सुन्दर लड़कियाँ मिल सकती हैं। नगर की सुन्दरतम लड़कियाँ लायी गयीं, किन्तु मजनू ने उनकी ओर देखा तक नहीं और खूब हँसने लगा, फिर उसने कहा कि लैला को देखने के लिए मजनू की आँख चाहिये। आपके पास वह आँख नहीं। मजनू

की आँख लैला को पैदा करती है, आविष्कार करती है—यानी लैला होने के लिए मजनू चाहिये।

एक-एक व्यक्ति में बुनियादी भेद है, इसलिए दुनिया में इतने तीर्थंकर इतने अवतार, इतने गुरु हैं। और इसलिये हो सकता है बुद्ध और महावीर जैसे व्यक्ति एक ही इलाके में वर्ष-वर्ष घूमे हों, फिर भी किन्हीं को बुद्ध दिखाई पड़े हों, किन्हीं को महावीर और किन्हीं को दोनों न दिखाई पड़े हों।

जब मैं देखता हूं तो जो दिखाई पड़ता है, वही महत्वपूर्ण नहीं है। मेरी विशिष्ट दृष्टि है और व्यक्ति विशेष की अलग है। जिसे महावीर में ज्योति दिखती है, हो सकता है वह कहे कि बुद्ध में, जीसस में, मुहम्मद में क्या है? लेकिन यह उसकी नासमझी है; क्योंकि जब कोई कहेगा कि महावीर में कुछ भी नहीं है तो उसे क्रोध आयेगा। वह अब भी नहीं समझ पा रहा; क्योंकि जब मैं कहता हूं कि जीसस में कुछ नहीं दिखाई पड़ रहा तो हो सकता है कि किसी को महावीर में कुछ भी दिखाई न पड़े। महावीर में जो है उसे देखने के लिए विशिष्ट आँख चाहिये। पृथ्वी पर विभिन्न लोग हैं, लेकिन एक बार साम्य दिख जाये तो सब भिन्नताएं खो जाती हैं; क्योंकि सब भिन्नताएं विभिन्न आकारों के दिए की विभिन्नताएं हैं—ज्योति की भिन्नता नहीं है। हो सकता है कि जिसने एक ही तरह का दिया देखा हो, दूसरे तरह का दिया देखकर कहने लगे कि यह कैसा दिया! ऐसा दिया तो होता भी नहीं। लेकिन ज्योति दिख जाने पर जो ज्योति का अनुभव है वह आकार का अनुभव नहीं है—एक चेतन का, एक सत्य का अनुभव है।

दिये की स्थिति से निरपेक्ष ज्योति की शिखा हमेशा ऊपर की ओर भागी जाती है और पलक झपकते आकार खो जाता है, निराकारमय हो जाती है। फिर कितना ही खोजो, नहीं मिलेगी; लेकिन ऐसा नहीं हो सकता है कि जो था, वह अब न हो जाये—तो ज्योति एक मिलन है आकार-निराकार का। तो प्रतिपल आकार निराकार में जा रहा है—आकार के पार संक्रमण हो रहा है निराकार में; वही ज्योति है जिसे हम आकार को देखकर नहीं देख पाते। इसलिये दियों को पहचानने वाले ज्योतियों के संबंध में झगड़ा करते हैं और उनके नाम पर पंथ और सम्प्रदाय बना लेते हैं। ज्योति से दिये का संबंध? दिया सिर्फ एक अवसर है जहाँ ज्योति घटी—आकार अवसर था निराकार में जाने का। **वर्धमान तो दिया हैं, महावीर ज्योति; सिद्धार्थ तो दिया हैं बुद्ध ज्योति; जीसस तो दिया हैं, क्राइस्ट ज्योति।** लेकिन हम दिये को पकड़

लेते हैं; और महावीर के संबंध में सोचते-सोचते वर्धमान के संबंध में सोचने लगते हैं--यही भूल हो गई। वर्धमान को, सिद्धार्थ को जो पकड़ेगा, महावीर को, बुद्ध को कभी नहीं जान सकेगा। इनमें क्या संबंध है? दोनों बात ही अलग हैं; लेकिन हमने दोनों को इकट्ठा कर रखा है। जीसस क्राइस्ट, वर्धमान महावीर, गौतम बुद्ध, दिये और ज्योति; और ज्योति का हमें कोई पता नहीं--दिये को हम पकड़े हैं।

मैं दिये में कोई अर्थ नहीं देखता हूं--वह हम हैं ही। इसलिये दिये की चिन्ता न कर ज्योति--जो हम हो सकते हैं, हैं नहीं—की चिन्ता करनी चाहिये। इधर महावीर को निमित्त बनाकर ज्योति पर विचार करना होगा। जिन्हें महावीर से ज्योति पहचान में आ सकती है तो ठीक, अन्यथा किसी और को निमित्त बनाया जा सकता है—सभी निमित्त काम आ सकते हैं। महावीर स्वयं में बहुत विशिष्ट हैं, किसी अन्य से नहीं, इसलिये उन पर सोचना बहुत आवश्यक है। तुलना नहीं है यहाँ, बल्कि विशिष्ट हैं—इस अर्थ में—जो घटना घटी उससे, वह जो ज्योतिर्मय होने की और निराकार में विलीन होने की घटना उससे विशिष्ट है। उस घटना से जीसस, बुद्ध, मुहम्मद, कन्फ्यूसियस विशिष्ट हैं। हम अविशिष्ट हैं, साधारण हैं—सिर्फ दिया हैं, ज्योति बन सकते हैं। साधारण असाधारण का अवसर है। मौका है, बीज है; और असाधारण वह है जो ज्योति बन गया है--शांति, आनंद और अखोज को उपलब्ध हो गया है। तो विशिष्ट का मतलब है--साधारण नहीं, असाधारण।

हम सब साधारण से असाधारण हो सकते हैं। साधारण होकर साधारण और असाधारण के बीच हमारे भेद एकदम नासमझी के हैं। साधारण बस साधारण ही है, चपरासी है कि राष्ट्रपति, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ये साधारण के ही दो रूप हैं—चपरासी पहली सीढ़ी पर और राष्ट्रपति आखिरी। साधारण की सीढ़ी पर सारा खेल है, कोई किसी भी पायदान पर हो सकता है—पहली अथवा हजारवीं; और इस साधारण की सीढ़ी से जो छलांग लगा जाते हैं, वे असाधारण में पहुंच जाते हैं। असाधारण की कोई सीढ़ी नहीं है, इसलिये दो असाधारण व्यक्तियों में कोई ऊपर-नीचे नहीं होता; जैसे कि कोई पूछे कि बुद्ध ऊँचे कि महावीर, कृष्ण ऊँचे कि क्राइस्ट। तो वे साधारण की सीढ़ी के गणित से असाधारण लोगों को सोचने चल पड़े और ऐसे पागल हुए हैं कि किताबें भी लिखते हैं कि कौन किससे ऊँचा और उन्हें पता नहीं कि ऊँचे और नीचे का

ख्याल साधारण दुनिया का ख्याल है—असाधारण ऊँचा और नीचा नहीं होता। ऊँचे-नीचे की दुनिया से बाहर चले जाने वाला ही असाधारण है। तो भला कैसे तौलें कि कबीर कहाँ कि नानक कहाँ...कोई ऊपर-नीचे का प्रश्न ही नहीं है। असल में ऊँचा और नीचा जहाँ तक है, वहाँ तक 'दिया' है। बड़ा और छोटा जहाँ तक है, वहाँ तक 'दिया' है।

ज्योति बड़ी और छोटी होती नहीं। ज्योति या तो ज्योति होती है या नहीं होती। 'ज्योति' बड़ी और छोटी का क्या मतलब है ? और निराकार में खो जाने की क्षमता छोटी ज्योति की उतनी ही है, जितनी बड़ी से बड़ी ज्योति की। और निराकार में खो जाना ही असाधारण हो जाना है।

(क्रमशः)

● संक्षिप्त संकलन :
'आकुल' राजेन्द्र

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

बोध-सूत्र

★

● सामान्य धारणानुसार एक आदमी पाप भी कर सकता है और पुण्य भी; पर मैं ऐसा नहीं मानता। जो पाप कर सकता है, पुण्य नहीं कर सकता और जो पुण्य कर सकता है वह पाप नहीं कर सकता।

● जीवन क्रांति का बुनियादी सूत्र अपने में परिवर्तन करना है, दूसरे में परिवर्तन करना नहीं है।

● गृहस्थ मैं उसे कहूंगा जो थोड़े लोगों के लिए उपयोगी है; और संन्यस्थ मैं उसे कहूंगा जो सबके लिए उपयोगी है।

● शरीर बिलकुल ऐसा हो जाये कि नहीं है, तो आसन हो गया और मन ऐसा हो जाय कि नहीं है, तो ध्यान हो गया।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

★ "हुं"कार ★

आज रे मन एक बार तू हुंकार दे ।

रागिनी मारू सुना, युग क्रांति का वह ज्वार आए ।
शास्त्र पूजक चेतना की, धरा में भूकंप आए ।।
नभ-नासिका से नाभि-भू तक, तीव्रतम फुंकार दे,
'ध्यान' के ही मंत्र में, एक बार तू हुंकार दे ।।
रजनीश के ही 'ध्यान' में एक बार तू हुंकार दे ।
आज रे मन एक बार तू हुंकार दे ।

क्रोध की पैशाचिनी काली भुजंगिनि वासनाएँ,
चित्त में बादल बनी हैं, मोहमत्त कल्पनाएँ ।
यह अचेतन क्या ? अभी इसकी हमें झंकार ला दे,
'ध्यान' के मंत्र में एक बार तू हुंकार दे ।
आज रे मन एक बार तू हुंकार दे ।।

फूंक जीवन वेणु में, संगीत की सरगम सुहानी,
मिटे मृत्-तुल देह से, यह चित्त चंचलता पुरानी ।
शांत गहरी स्वास में, तू बुद्धि का सब भ्रम मिटा दे,
खंड में ही लिप्त क्यों, अखंड की टंकार दे ।
आज रे मन एक बार तू हुंकार दे ।।

आज भी मानव प्रवृत्ति का दास होता जा रहा है,
संप्रदायों के बवंडर, में उड़ा ही जा रहा है ।
'रजनीश' ही अद्वैत है, और 'सत्य' है यह 'ज्ञान' ला दे,
प्रवृति को तू-दास मानव का बना दे ।
आज रे मन एक बार तू हुंकार दे ।।

'ध्यान' के विज्ञान से, युग क्रांति से, जिस तरह भी हो,
'प्रेम' का विकिरण घना कर, रूढ़ियों को ध्वस्त कर दे ।
शांति मय सन्यास आए, ज्ञान का वह बम पटक दे,
मौन मौलिक सत्य लाकर, चित्त में 'आनन्द' ला दे ।
आज रे मन एकबार तू हुंकार दे ।।

● *अवधेश श्रीवास्तव "मित्र"*
बिनेकी—सिवनी (म. प्र.)

ईश्वर : है या नहीं है

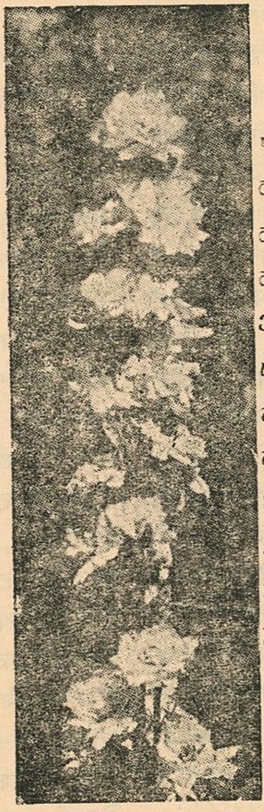

पूर्छा ममत्व को पैदा करती है। ममत्व बंधन हो जाता है। बंधन पाप है। अपूर्छा अममत्व को पैदा करती है, वैराग्य को पैदा करती है, अनासक्ति को पैदा करती है। अनासक्ति मुक्ति है, इसलिए मुक्ति पुण्य है।

स्थान :
ताराबाई हाल, बम्बई
६ सितम्बर, १९६४

प्रश्न : "ईश्वर है या नहीं है" ?

भगवान श्री : जब भी हम ईश्वर के सम्बन्ध में सोचते हैं तो हम एक व्यक्ति की तरह एक इण्डीवीजुग्रल की तरह सोचते हैं। जब हम पूछते हैं, ईश्वर है या नहीं, तब हमारा मतलब होता है कि एक व्यक्ति की तरह ईश्वर कहीं बैठा हुआ है या नहीं बैठा हुआ है। व्यक्ति की तरह ईश्वर की जो कल्पना है वह मनुष्य की अपनी ही

कल्पना से निर्मित हुई है। मनुष्य ईश्वर की कल्पना ऐसी ही करता है जैसा वह स्वयं है। वह काम करता है, ईश्वर काम करता होगा। वह कुछ बनाता और मिटाता है तो ईश्वर बनाता और मिटाता होगा। ईश्वर की जो कल्पना है वह मनुष्य के ही रूप का विस्तृत रूपांतरण है और यह मनुष्य की कल्पना के लिए बिल्कुल स्वाभाविक है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि हम अपने ही रूप में ईश्वर को कल्पित करते हैं। इस कल्पना में, एक तो सहज और स्वाभाविकता भी है, क्योंकि हम और कोई रूप जानते ही नहीं, दूसरा अहंकार की एक तृप्ति भी है कि ईश्वर भी हमारे जैसा है, हमारा सजातीय है। जबकि ईश्वर अगर है तो व्यक्ति नहीं हो सकता है। व्यक्ति इसलिए नहीं हो सकता है कि जो भी व्यक्ति, **जो भी एक सीमा में बंधा है, जिसकी भी एक देह और एक रूप है वह शाश्वत नहीं हो सकता।** वह नष्ट नहीं हो सकता। दूसरी बात, **जो एक जगह केन्द्रित हो व्यक्ति की तरह वह सर्वव्यापी नहीं हो सकता है। वह सब जगह नहीं हो सकता है जो एक जगह हो।**

यह जो हमारी ईश्वर की धारणा है व्यक्ति की तरह, यह बहुत ही भ्रान्त है। ईश्वर को व्यक्ति न मानकर शक्ति मानना ज्यादा उपादेय है। और शक्ति का अर्थ अगर हम समझें तो मैं कहूंगा, भगवान तो नहीं है जगत में किन्तु भगवत्ता जरूर है। डिवनिटी तो नहीं है डिवाइननेस जरूर है। कोई भगवान तो नहीं है लेकिन भगवत्ता कोई देवता तो नहीं है लेकिन दिव्यता, कोई चैतन्य व्यक्ति तो नहीं है लेकिन चेतना का अनन्त प्रवाह जगत में है। जगत में पदार्थ तो हमें दिखायी पड़ता है, पदार्थ के भीतर हमें चैतन्य का प्रवाह भी अनुभव होता है। एक पौधे को बढ़ते हुए देखते हैं, एक बच्चे को पैदा होते हुए जीवित और फिर मरते देखते हैं। सारे जगत में पदार्थ दिखाई पड़ता है। पदार्थ के किनारे ही किनारे कोई अदृश्य चैतन्य भी विकसित और जीवित, पल्लवित होता दिखायी पड़ता है।

पदार्थ की समग्रीभूत एकता, टोटलिटी का नाम जगत है, चैतन्य की समग्रीभूत एकता का नाम ईश्वर है। जगत में जड़ पदार्थ है और चैतन्य परमात्मा है।

यह व्यक्ति की तरह कोई परमात्मा नहीं है जिसकी पूजा की जा सके, जिसकी स्तुति की जा सके, जिसको बुलाया ज सके, जो वक्त पर आपके काम पड़ जाय। चैतन्य का एक प्रवाह है जिसमें जिसको आप तो नहीं बुला सकते, लेकिन जिसमें आप सम्मिलित हो सकते हैं। जिसको आप आमंत्रित करके अपने द्वार पर

नहीं ला सकते लेकिन अपने द्वार तोड़कर जिसमें आप सम्मिलित हो सकते हैं। **एक बूंद सागर को तो अपने में नहीं बुला सकती, लेकिन बूंद सागर में गिर जा सकती है।**

यदि हमारे भीतर हमें चैतन्य का अनुभव हो तो हमें सारे जगत में चैतन्य का विस्तार अनुभव होगा। हमें वही अनुभव होता है जगत में, हम उसी को अनुभव कर पाते हैं, जो हमें अपने भीतर अनुभव होता है। अगर आपको ज्ञात होता हो कि आप केवल देह हैं, शरीर हैं तो दूसरे भी आपको केवल देहें और शरीर दिखायी पड़ेंगे। स्वाभाविक भी है। अगर मुझे अनुभव होता हो कि मैं केवल शरीर मात्र हूं, तो आप केवल मुझे शरीर मात्र ही दिखायी पड़ेंगे। और तब सारा जगत मुझे मैटर और पदार्थ दिखायी पड़ेगा। लेकिन अगर मुझे भीतर अनुभव होता हो उसका जो कि आत्मा है, चेतना है तो फिर आप मुझे शरीर दिखायी नहीं पड़ेंगे। जिस क्षण मैंने जान लिया कि मैं आत्मा हूं तो आप भी मुझे आत्मा दिखायी पड़ेंगे। तब जगत मुझे पदार्थ दिखायी नहीं पड़ेगा, पदार्थ के भीतर मुझे चैतन्य का अनन्त स्रोत और प्रवाह दिखायी पड़ेगा। कहीं सोया हुआ, कहीं जागा हुआ। जहां बिलकुल जड़ है वहां भी वह चैतन्य का प्रवाह एकदम अनुपस्थित नहीं है। वहां वह प्रसुप्त है। वहां भी दिखायी पड़ेगा

तो परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, एक अनुभूति है, संसार भी एक अनुभूति है और परमात्मा भी एक अनुभूति है। जो व्यक्ति अपने को देह मानता है उसे सारा जगत पदार्थ दिखायी देता है, जो अपने को आत्मा जानता है उसे सारा जगत परमात्मा दिखायी देता है। मेरे लिए ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं, **ईश्वर चैतन्य का अनन्त स्रोत और प्रवाह है। और यह अनन्त स्रोत और प्रवाह पूजा और अर्चना करने से किसी मतलब का नहीं है, यह अनन्त स्रोत और प्रवाह ज्ञान की अनुभूति है।** और इस अनुभूति तक पहुंचने के लिए आप स्वयं अपने चैतन्य को जानने में समर्थ हो जायं तो पहुंच जाते हैं। ईश्वर की जो धारणाएं हैं कि आपने अगर बुरा किया तो आप पर क्रुद्ध हो जायेगा और आपने अगर उसकी स्तुति की तो आप पर प्रसन्न हो जायेगा, यह आदमी की अपने ही रूप में बनायी हुई धारणाएं हैं। पुराने ईश्वर की ढेर धारणायें हैं कि वह अपने दुश्मनों को नष्ट कर देता है, जो उसका विरोध करते हैं, उनको नरक में डाल देते हैं, उनको सड़ाता और गलाता है। यह हमने आदमी की कल्पना में ही किया। और जो उसकी स्तुति करते हैं और उसकी खुशामद करते हैं, उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं और उसके मंदिर की

मूर्ति के सामने रोज सिर टेकते हैं, उनपर वह बड़ा प्रसन्न हो जाता है। और उनको बड़े पुण्य का लाभ देता है, और उनको स्वर्गों में विराजमान करता है और सुख के अनन्त द्वार खोल देता है। यह एक सामान्य आदमी की जो शकल है वही शकल बड़े रूप में ईश्वर की है। सामान्य आदमी खुशामद से प्रसन्न होता है, निन्दा से क्रुद्ध होता है।

ईश्वर में कोई भी भाव नहीं हो सकते। जिसमें भाव हों, वह अभी ईश्वर नहीं हुआ। ईश्वर की सत्ता निर्भाव होगी और निर्भाव व्यक्ति नहीं हो सकता है।

आपसे कोई ईश्वर का ऐसा सम्बन्ध नहीं है कि आप उसको पिता बना लें, माता बना लें, प्रेमी बना लें। सारी दुनिया में जो ईश्वर के रूप प्रचलित हैं, हम किसी न किसी रूप में वे ही सम्बन्ध उससे भी कायम कर लेते हैं, जो हमारे आस-पास के लोगों से हैं। सूफी हैं, वह उसे अपनी प्रेयसी समझते हैं। ढेर भक्त हैं, वे उसे अपना पति समझते हैं। ढेर भक्त हैं, वे उसे अपना पिता समझते हैं। पिता तो बहुत लोग समझते हैं। कोई उसे माँ के रूप में भी समझता है। ऐसे भक्त भी हैं जो वात्सल्य भाव से उसको पुत्र रूप में और बच्चे के रूप में समझते हैं। जो मनुष्य के अपने सम्बन्ध हैं, उन्हीं सम्बन्धों को वह प्रक्षेपण (प्रोजेक्ट) कर लेता है परमात्मा में। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है इसलिए आप उससे सम्बन्धित नहीं हो सकते। और उससे आपका कोई सम्बन्ध कायम नहीं हो सकता है। जब आप अपने भीतर उसका अनुभव करेंगे जो असंग्य है और असंबंधित है, जिसका किसी से कोई सम्बन्ध नहीं, उस चैतन्य का अनुभव करेंगे, उस वक्त आप परमात्मा से सम्बन्धित हो जावेंगे।

मेरी धारणा आपको कह रहा हूं—ईश्वर पूजा के योग्य नहीं, ईश्वर होने योग्य जरूर है। यानी आप पूजा तो नहीं कर सकते, लेकिन हो सकते हैं। ईश्वर आपके ही भीतर छिपी हुई एक सम्भावना है अनुभूति की। अगर आपके भीतर परिपूर्ण उस चैतन्य का विकास हो तो आप ईश्वर हो सकते हैं। ईश्वर होने की संभावना है, ईश्वर की आराधना की कोई संभावना नहीं है। ईश्वर को प्रसन्न करने की कोई सम्भावना नहीं है। क्योंकि वहां कोई है नहीं जो प्रसन्न हो जाय। वहां कोई व्यक्ति केन्द्र नहीं है जो आपसे प्रभावित हो जाय।

आपके भीतर कोई छिपा हुआ बीज है जो विकसित हो तो ईश्वर में परिणत हो जायेगा। आप बीज रूप से परमात्मा हैं और चाहें तो आप वृक्ष रूप से परमात्मा हो सकते हैं। जो अभी बीज है वह कल विकास हो

सकता है। और प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक चेतना इस भांति दो स्थितियों में होती है—एक तो वह स्थिति, अगर चेतना को प्रतीत होता है कि मैं पदार्थ हूं, यह अज्ञान की स्थिति है, और जब चेतना को प्रतीत होता है कि मैं परमात्मा हूं, यह ज्ञान की स्थिति है। अज्ञान की स्थिति दुख की स्थिति है, ज्ञान की स्थिति आनन्द की स्थिति है। इसलिए कहा, परमात्मा परम आनन्द है। मेरे लिए वह कोई व्यक्ति नहीं है।

प्रश्न : पाप और पुण्य में क्या फर्क है। और हर किसी की कल्पना में अन्तर हो सकता है, अलग-अलग कल्पना हो सकती है पाप और पुण्य की, इसलिए वास्तव में पाप और पुण्य क्या है?

भगवान श्री : यह सच है, अगर हम दुनिया के अलग-अलग लोगों की कल्पनाएं समझें तो पाप और पुण्य की सारे लोगों की कल्पनाएं अलग हैं। हो सकता है, जो बात किसी एक परम्परा में पाप हो वह दूसरी परंपरा में पाप न हो। यह भी हो सकता है कि वह किसी परम्परा में पुण्य हो। एक परम्परा किसी भी तरह की हिंसा को पाप समझती है। ऐसी परंपरायें हैं जो वन्य वध को पाप नहीं समझतीं हैं, पुण्य समझते हैं। तो पाप पुण्य की सारे जागतिक कल्पनाओं में बड़ा भेद है। बहुत स्वाभाविक है पूछना कि पाप क्या है, पुण्य क्या है? मैं आपको बताऊं, मेरे लिए पाप और पुण्य कर्म से संबंधित नहीं हैं। यह जरा दिक्कत की बात मालूम होगी। आमतौर से हम सोचते हैं पाप कर्म और पुण्य कर्म। कुछ कर्म पाप हैं और कुछ कर्म पुण्य हैं, ऐसा हम सोचते हैं। मैं ऐसा नहीं सोचता। पाप और पुण्य मेरे लिए कर्म न होकर चित्त की स्थितियाँ हैं। इसे समझ लेना जरूरी होगा। पाप और पुण्य मेरे लिए कर्म न होकर चित्त की स्थितियां, स्टेट आफ माइण्ड हैं। वही कर्म एक चित्त की स्थिति में पाप हो सकता है और दूसरे चित्त की स्थिति में पुण्य हो सकता है। वही कर्म एक चित्त स्थिति में पाप हो सकता है और दूसरे चित्त स्थिति में पुण्य हो सकता है। एक स्थिति में बन्धनकारी हो सकता है, दूसरी स्थिति में बन्धनकारी नहीं हो सकता है। जैसे, आप भी राह पर चलते हैं, कीड़े मरते हैं। आप श्वास लेते होंगे, कीड़े मरते होंगे। इन सबका पाप बन्ध है। महावीर तीर्थंकर होने के बाद भी रास्ते पर चलते हैं और श्वास लेते हैं। ज्ञान को पा लेने के चालीस वर्ष बाद तक भी वह श्वास लेते हैं, कीटाणु मरते हैं। फिर उनका पाप बन्ध है। और अगर उनका पाप बन्ध होता है तो महावीर को फिर जन्म लेना होगा और पापों

का निपटारा करना होगा। तीर्थंकर का फिर जन्म होता नहीं। या तो यह बात गलत होगी और या फिर तीर्थंकर की चित्त की स्थिति में वही कर्म पाप न होता होगा जो कर्म आपकी चित्त की स्थिति में पाप होता है।

एक व्यक्ति एक मन्दिर बनाता है। कहने वाले, समझाने वाले पुरोहित और पण्डितों का वर्ग कहेगा, यह पुण्य कर्म है लेकिन वह आदमी मन्दिर बनाकर एक तख्ती उसके ऊपर अपने नाम की लगा देता है। यह पुण्य कर्म नहीं रहा, यह पाप कर्म हो गया। इसने मंदिर बनाया ही नहीं। इसने मंदिर में जो भगवान की मूर्ति रखी है, वह झूठी है। यह अपनी ही रखना चाहता था, नहीं रख पाया। यह अपने लिए ही बनाया गया मन्दिर है, जो तख्ती उसकी बाहर लगी है, वह इसकी सूचना है। यह अपने अहंकार की प्रतिष्ठा है, भगवान की प्रतिष्ठा नहीं। यह मंदिर बनाना पुण्य कर्म नहीं है, यह पाप कर्म हो गया।

आपके चित्त की स्थितियां पाप की होती हैं और पुण्य की होती हैं। कर्मों का कोई प्रश्न नहीं है। देखें खुद महावीर की भी धारणा यह है कि अगर परिपूर्ण जागरूक चित्त की अवस्था में कोई कर्म किया जाय तो वह पाप नहीं हो सकता है। और मूर्छित चित्त की अवस्था में कोई कर्म किया जाय तो पाप हो जाता है। जैसे, आप अनुभव करेंगे, अगर आपको क्रोध करना है तो आप होश में क्रोध नहीं कर सकते। आज तक इस जमीन पर कोई व्यक्ति होश में क्रोध नहीं कर सका है। क्रोध करने के लिए मूर्छित होना, बेहोश होना जरूरी है। इसलिए सारे क्रोध करने वाले क्रोध के बाद पछताते पाये जाते हैं। पश्चाताप करते हैं कि यह बड़ा बुरा हो गया। कैसे मैंने कर लिया। मैं नहीं चाहता था और किया। निश्चित ही होश में आने पर पश्चाताप हो रहा है। उन्होंने जो किया बेहोशी में किया होगा। दुनिया का कोई बुरा काम बेहोशी के बिना नहीं किया जा सकता। बेहोशी बड़ी जरूरी शर्त है। आज तक किसी आदमी ने किसी की हत्या होश में नहीं की है और न कोई कर सकता है। एक बड़े आवेश की बेहोश स्थिति चाहिए, तब कोई कर सकता है। मूर्छा चाहिए। मूर्छा के आवेग में जो होगा वह पाप है।

मेरी बात समझ लें आप। **चित्त की मूर्छा के आवेग में होगा जो कर्म, वह पाप है। और चित्त की परिपूर्ण जागरूक, अमूर्छित स्थिति में जो कर्म होगा वह पुण्य है। चित्त की अमूर्छित अवस्था में, जब आप परिपूर्ण होश में भरे हैं, जो होगा वह पुण्य है। और** जब आप भीतर बेहोश हो गये हैं, आपको कुछ पता नहीं चलता है कि आप हैं भी

था नहीं। और कोई कर्म कर रहे हैं, वह कर्म बेहोशी है। आपने सबमें क्रोध किया है, उसका स्मरण कर लें। उस क्रोध की स्थिति में आप होश में नहीं होते हैं।

तो क्रोध पाप है और अक्रोध पुण्य है। अशांति पाप है और शाँति पुण्य है। शांति से जो कर्म निकले वह पुण्य कर्म होगा, अशांति से जो कर्म निकले वह पाप कर्म होगा। शांति से कोई भी ऐसा कर्म निकालना असंभव है जो किसी को दुख पहुंचा सके।

महावीर घर छोड़ना चाहते थे। उनके पिता से उन्होंने आज्ञा चाही कि मैं घर छोड़ना चाहता हूं और संन्यस्थ होना चाहता हूं। उनके पिता ने कहा कि मेरे रहते युवा पुत्र घर छोड़ेगा तो मुझे बहुत दुख होगा। जब मैं न रह जाऊं तब तुम संन्यासी हो जाना। महावीर रुक गये। महावीर रुके कि जब तक पिता हैं, वह संन्यास न लेंगे। महावीर का जो संन्यास था वह एक बड़ी परम शांति से निकल रहा था। यह भी उन्हें संभव नहीं था कि वह पिता—यद्यपि पिता को मोह के कारण दुख हो रहा था—लेकिन यह भी उन्हें संभव नहीं हुआ कि पिता को दुख दें, वे रुके, दो वर्ष रुक गये। पिता की मृत्यु, अंत्येष्टि करके वापस लौटते थे, रास्ते में उन्होंने अपने बड़े भाई को कहा, अब मैं संन्यस्थ हो जाऊं? उनके बड़े भाई ने कहा, तुम कैसे पागल हो, एक वज्र-घात हुआ कि पिता नहीं रहे, और तुम आज घर छोड़ दोगे? और तुम्हें यह भी संकोच नहीं होता अभी हम पिता को समाप्त करके ही लौटते हैं। तो मैं जब तक न कहूं, तब तक संन्यस्थ न होना। महावीर फिर रुक गये। वे फिर दो वर्ष रुके, इन दो वर्षों में घर के लोग हैरान हुए कि वह तो संन्यस्थ हो ही चुके हैं। घर में थे लेकिन घर में न होने के बराबर हो गये। हवा की तरह उनका होना हो गया। उठते हैं, बैठते है, चलते हैं, फिरते हैं, लेकिन जैसे घर में नहीं हैं। जैसे घर का उन्हें पता ही नहीं चल रहा है। जैसे वे वन में ही हैं, ऐसा ही जी रहे हैं। तो घर के लोग हैरान हुए, उन्होंने कहा, अब इनको रोक रखना व्यर्थ है और घर के लोगों ने कहा, अब आप चाहें तो चले जायँ, क्योंकि जहाँ तक हम समझते हैं, आप जा ही चुके हैं। और सिर्फ नाम मात्र को हमारे कारण उपस्थित हैं। महावीर चले गये। यह संन्यस्थ होना पुण्य कर्म है। एक व्यक्ति की पत्नी मर गयी, एक व्यक्ति को घाटा लग गया और वह संन्यासी हो गया, वह पाप कर्म है। वह क्रोध में, आवेश में, दुख में, पीड़ा में, मूर्छा में अगर संन्यास ले लिया तो पाप है।

मेरी बात समझ रहे हैं? यानी मैं यह कह रहा हूं कि चित्त की

अवस्था की बात है, आपके कर्म की नहीं। संन्यस्थ होने जैसा कर्म भी पाप कर्म हो सकता है, अगर चित्त की अवस्था मूर्छा है। संन्यास जैसी चीज पाप कर्म हो सकती है, अगर चित्त मूर्छित है और मूर्छा में संन्यास लिया हो। और संन्यास शांति से फलित हुआ हो, शांति से विकसित हुआ हो तो पुण्य कर्म हो जायेगा। मेरी बात समझे होंगे, कि मैं यह कह रहा हूं कि कर्म बिल्कुल अर्थहीन है, वह विचारणीय नहीं है, आपके चित्त की स्थिति विचारणीय है। चित्त की स्थिति विचारणीय है।

इसी सिलसिले में पूछा है कि क्या पुण्य कर्मों के फल से संपत्ति मिलती है? यह बिल्कुल झूठ है, यह बिल्कुल असत्य है। पुण्य कर्मों के फल से संपत्ति नहीं मिलती। पुण्य कर्मों के फल का संपत्ति से कोई संबंध नहीं है। अगर मेरी बात आप समझें, तो पहले तो मैंने यह कहा कि पुण्य कोई कर्म नहीं है, चित्त की अवस्था है।

पाप भी कोई कर्म नहीं है, चित्त की अवस्था है। तो पाप की चित्त अवस्था से दुख की चित्त अवस्थाएं मिलेंगी। और पुण्य की चित्त अवस्था से आनन्द की चित्त अवस्थाएं मिलेंगी। संपत्ति से कोई वास्ता नहीं है।

यह हो सकता है, एक दरिद्र जिसके पास बिल्कुल संपत्ति नहीं है, आनन्द में हो और यह हो सकता है और रोज हो रहा है कि जिसके पास बहुत संपत्ति है वह बिल्कुल नर्क में हो। जो संपत्ति को तौलेंगे वह संपत्तिशाली को कहेंगे, इसे पुण्य कर्म का फल मिला। मैं चित्त की अवस्थाएं तौलता हूं तो मैं कहूंगा कि वह जो दरिद्र है उसको पुण्य का फल मिला।

संपत्ति आपके पुण्य और पाप से नहीं मिलती, संपत्ति समाज की व्यवस्था से मिलती है। सोवियत रूस में बीस करोड़ लोगों ने संपत्ति बाँट ली। उन्होंने पाप और पुण्य कर्म क्या समान कर लिए? और बीस करोड़ लोगों ने संपत्ति को बाँट लिया आपस में। अब आपके जैसा करोड़पति वहाँ नहीं है और आपके जैसा भिखमंगा वहाँ नहीं है। **तो क्या वहाँ ऐसा बीस करोड़ लोगों में एक भी आदमी नहीं है जिसके कर्म में भिखमंगा होना बदा हो?** यह सोचने जैसी बात है कि बीस करोड़ लोगो में एक भी ऐसा आदमी नहीं है जिसके कर्म में भिखमंगा होना बदा हो और एक भी आदमी ऐसा नहीं है जिसके कर्म में संपत्तिशाली होना बदा हो। पहले राजा भी कर्म से हुआ करते थे, अब बिचारों का कोई पता नहीं सारी जमीन पर। शायद अब कोई ऐसे कर्म नहीं करता कि राजा हो। थोड़े दिनों में सारी दुनिया में समाजवाद होगा, सारी जगह संपत्ति वितरित हो

जायेगी। तो फिर कोई ऐसे कर्म नहीं करेगा कि कोई भिखमंगा हो।

यह संपत्तिशाली ने अपने शोषण को छिपाने का उपाय निकाला है कि वह कहता है कि मेरे पुण्य का फल है। यह पुण्य का फल नहीं है, यह प्रत्यक्ष रोज जो शोषण कर रहा है, उसका फल है। संपत्ति पुण्य से नहीं मिलती, शोषण से मिलती है। और यह हो सकता है कि इस शोषण में—जो ऊपर हों—वे बुरे लोग हों बजाय उनके कि जो शोषण में नीचे हैं और शोषित हुए। लेकिन सारी धार्मिक परम्पराएं, साधु, संन्यासी और पंडित धनपति से पलते और पुजते हैं। ये सब धनपति के नीचे जीते हैं और पोषण पाते हैं। अब तक दुनिया के जो सारे धर्मों की परम्पराएं हैं—वे नहीं जिन्होंने परम्पराओं को शुरू किया—बल्कि जो परम्पराएं हैं, जो संस्थाएं हैं, जो पुरोहित हैं, जो वर्ग पैदा हुआ है, उसका शोषण, उसका लाभ उठाने को, वह सबका सब संपत्तिशाली से पलता और पुजता है। इसलिए वह संपत्तिशाली के हमेशा समर्थन में है और यह तरकीब ईजाद की गयी कि वह यह कहे कि संपत्ति गरीब को इसलिए नहीं मिली कि उसने पीछे जन्म में पाप किये हैं और सम्पत्ति धनपति को इसलिए मिली कि उसने पीछे पुण्य किये हैं। **और इस भांति जो संघर्ष सँभावित है संपत्तिशाली के विरोध में गरीब का उसको रोकने में उपयोग करे। वह जो संभव है कि गरीब टूट पड़े अमीर पर उसे रोकने में उपयोग करे उस विचार का।**

यही वजह थी कि कार्ल मार्क्स ने यह कहा कि सब धर्म अफीम का नशा है और सम्पति शलियों के पक्ष में है। इस वजह से उसने यह कहा। यह गरीब के लिए अफीम का नशा है। वह सुलाता है और उससे कहता है, तुम्हारे पाप का फल है और अमीर को यह मौका देता है कि तेरे पुण्य का यह फल है। यह बात बिलकुल झूठी है। और आज नहीं कल साफ हो जायेगा और साफ हो गया है कि दुनिया में संपत्ति कर्म से नहीं बंटेगी, अब समाज की व्यवस्था से बंटेगी। अभी भी समाज की व्यवस्था से ही बंटी हुई है।

तो फिर कर्म से क्या बंटेगा ? मेरा मानना है कि कर्म से चित्त की स्थितियां मिलती हैं, सोवियत रूस में बीस करोड़ लोगों की संपत्ति बराबर कर दी लेकिन चित्त की स्थितियाँ बराबर नहीं कीं, और न कभी की जा सकती हैं। उन बीस करोड़ लोगों में सभी लोग समान सुखी नहीं हैं। समान संपत्ति दी जा सकती है, समान मकान दिये जा सकते हैं, समान शिक्षा दी जा सकती है, समान वस्त्र दिये जा सकते हैं, सब समान दिया जा

सकता है, लेकिन चित्त की समान स्थिति नहीं दी जा सकती है। वहाँ दुख और सुख के भेद होंगे, वहां शांति और अशांति के भेद होंगे, वहां क्रोध और अक्रोध के भेद होंगे, जो पाप की किसी स्थिति में कर्म करेगा, स्वाभाविक है कि वह पाप की उस स्थिति को प्रगाढ़ करेगा। और आने वाले जन्मों में उसे जो चित्त मिलेगा वह और भी मूर्छित चित्त होगा, और भी दुखी चित्त होगा। जो जागरूक चित्त से कर्म करेगा वह जागरूकता के प्रति और प्रगाढ़ होगा। आने वाले जन्मों में, आने वाले दिनों में उसे और भी जागरूक चित्त मिलेगा जो कि और ज्यादा आनन्द और शांति के निकट उसे ले जायेगा।

तो आपके भीतर की शांति और सुख, शांति और आनन्द, आपके कर्मों के फल नहीं होते हैं। मेरी धारणा मैं आपको कह रहा हूं। जो आपके पास है वह आपके कर्मों का फल नहीं है, जो आप हो, वह आपके कर्मों का फल है। इसे मैं फिर दोहरा रहा हूं, जो आपके पास है वह आपके कर्मों का फल नहीं है, जो आप हो वह आपके कर्मों का फल है।

यह जो पूछा है, इसलिए स्वाभाविक है, अनेक बार पापी के पास धन देखा जाता है। पुण्यात्मा के पास धन नहीं देखा जाता, तो हमको बड़ी मुश्किल होती है यह समझाने में कि कैसे इस बात को समझायें। तो फिर बड़ी झूठी दलीलें उसके लिए इकट्ठी की जाती हैं, जब कि सचाई कुल इतनी है कि **धन से कोई सम्बन्ध पाप का और पुण्य का नहीं है।**

कोई दूर का भी नहीं है। आपके आंतरिक चित्त-स्थितियों का सम्बन्ध है। एक और मजे की बात है कि यह इतनी ज्यादा सेल्फ कण्ट्राडेक्टरी, इतनी परस्पर विरोधी बात प्रचलित रही है कि **हम यह कहते हैं कि पुण्य का फल तो धन है। लेकिन अब कोई आदमी धन का त्याग करता है तो इस कर्म को भी हम पुण्य कहते हैं। महावीर ने सारे धन का त्याग किया तो हम कहते हैं बड़ा पुण्य कर्म है। यह बड़ी हैरानी की बात है कि पुण्य का फल भी धन मिलता है और धन का त्याग भी पुण्य कहलाता है।** अगर पुण्य का फल धन होता हो तो धन के त्याग की चित्त-स्थिति किसी पाप का परिणाम होना चाहिए। किसी को यह ख्याल उठे कि हम धन छोड़ दें तो जरूर किसी पाप का, पाप के किसी कर्म का कारण होना चाहिए कि धन छोड़ने का भाव पैदा हो रहा है। धन जोकि पुण्य का फल है। अगर धन का उपलब्ध होना पुण्य का फल है तो धन का छोड़ना कैसे पुण्य हो जायेगा। लेकिन धन को छोड़ने को हम पुण्य मानते हैं। और मैं भी मानता हूं। इसलिए नहीं कि

वह कर्म पुण्य है, बल्कि इसलिए कि धन को पकड़ना तो मूर्छा में होता है, धन को छोड़ना जागृति में होता है। धन को पकड़ना तो बिल्कुल मूर्छित अवस्था है, कोई भी पकड़ता है लेकिन जो परिपूर्ण जागरूक है वही केवल धन को छोड़ सकता है। धन को पकड़ना हमारी मूर्छा का हिस्सा है। धन को छोड़ना—कोई मूर्छित हालत में धन को नहीं छोड़ सकता। इसलिए धन को छोड़ना मेरे लिए पुण्य है, क्योंकि वह चित्त की अवस्था में तभी संभव होगा जब कि कोई परिपूर्ण जागरूक हो। अब ये महावीर और बुद्ध जैसे लोग, जिनके पास सब था उसे छोड़कर चले गये, आप सोचते हैं, यह कोई सामान्य स्थिति में सम्भव है? यह परिपूर्ण जागरूक स्थिति इसके लिए चाहिए। यह इतनी जागरूक स्थिति उन्हें चाहिए कि वहां कोई सुख उन्हें दिखाई नहीं दे रहा है।

जब बुद्ध गाँव के बाहर निकलते थे, जो उन्हें छोड़ने गया था गांव के बाहर, उसने उनसे कहा कि इतनी धन-सम्पत्ति को छोड़कर आप जा रहे हैं। बुद्ध ने कहा, "मैं धन-संपत्ति को नहीं, केवल विपत्ति को छोड़कर जा रहा हूं।" मेरे पीछे तुम्हें महल दिखाई पड़ता है, मुझे केवल अग्नि की लपटें दिखायी पड़ती हैं। हमें जहां महल दिखाई पड़ रहे हैं वहां बुद्ध को अग्नि की लपटें दिखायी पड़ रही हैं। यह बहुत किसी परिपूर्ण जागरूकता में संभव होता है, जहां जीवन का सत्य जैसा है वैसा दिखायी पड़ता है। और तब उसके अनुकूल व्यवहार शुरू हो जाता है।

तो आपको मैं पाप कर्म छोड़ने को नहीं कहता और पुण्य कर्म करने को नहीं कहता। **मैं आपसे कहता हूं कि अपने चित्त की मूर्छित अवस्था को छोड़ें और जागरूक अवस्था को पैदा करें। जितनी मूर्छा भीतर छूटती चली जायेगी उतने पाप कर्म छूटते चले जायेंगे और जितनी जागरूकता भीतर आयेगी उतने पुण्य कर्म अपने आप घटित होने लगेंगे।** अगर उसके पहले कोई मूर्छित अवस्था में पुण्य का कर्म करेगा, वह भी पापी होगा। मूर्छित अवस्था में पुण्य असंभव है। कोई पुण्य संभव नहीं हो सकता। और जागरूक अवस्था में कोई पाप संभव नहीं है, कोई पाप संभव नहीं है। इसलिए पाप से पुण्य की तरफ नहीं जाना है, **मूर्छा से अमूर्छा की तरफ जाना है।**

महावीर का एक प्रसिद्ध सूत्र है—जिसमें उन्होंने कहा है 'मूर्छा परिग्रहो'। उनसे किसी ने पूछा कि परिग्रह क्या है? तो सामान्य साधु कहेगा, धन संपत्ति परिग्रह है। महावीर ने कहा, "मूर्छा परिग्रह है। मेरी पूरी चर्चा—दो शब्दों में है, मूर्छा परिग्रह है।" कोई भी कहेगा, परिग्रह क्या है,

तो कहेगा धन है, मकान है, स्त्री है, पुत्र है, यह परिग्रह है। और महावीर ने कहा—मूर्छा परिग्रह है। धन नहीं है परिग्रह, धन है मूर्छा, मकान नहीं है परिग्रह, मकान है मूर्छा। मकान में मूर्छा हो तो मकान मेरा मकान हो जाता है। स्त्री में मूर्छा हो तो वह मेरी स्त्री हो जाती है। धन में मूर्छा हो तो वह धन मेरा धन हो जाता है।

मूर्छा ममत्व को पैदा करती है। ममत्व बंधन हो जाता है। बंधन पाप है। अमूर्छा, अनमत्व को पैदा करती है, वैराग्य को पैदा करती है, अनासक्ति को पैदा करती है। अनासक्ति मुक्ति है, इसलिए मुक्ति पुण्य है।

तो मूल में अगर पकड़िये जाकर भीतर या तो मूर्छा पकड़ में आयेगी और या जागरण पकड़ में आयेगा। मूर्छा पाप है और अमूर्छा पुण्य। फिर मूर्छा में जो भी हो वह सब पाप और अमूर्छा में जो भी हो वह सब पुण्य है। इकट्ठा निर्णय लेता हूं कि **कर्म का करने वाला मूर्छित है या अमूर्छित है।**

सामान्य धारणा यह है कि एक **आदमी पाप भी कर सकता है और पुण्य भी कर सकता है। मैं ऐसा नहीं मानता। जो पाप कर सकता, पुण्य नहीं कर सकता। और जो पुण्य कर सकता है वह पाप नहीं कर सकता।** मैं जो कह रहा हूं आपको, सामान्य धारणा यह है कि एक आदमी पाप कर सकता है वह पुण्य भी कर सकता है। कभी पुण्य कर सकता है, कभी पाप भी कर सकता है। मेरा मानना है, यह असम्भव है। एक आदमी या तो पाप ही कर सकता है या पुण्य ही कर सकता है। या अगर एक आदमी ने एक भी पुण्य किया तो पाप करना असम्भव हो जायेगा। मेरी धारणा आपको समझ में आ गयी?

(एक आदमी पाप भी कर सकता है और पुण्य भी कर सकता है। मैं ऐसा नहीं मानता। जो पाप कर सकता है, पुण्य नहीं कर सकता। और जो पुण्य कर सकता है वह पाप नहीं कर सकता।

मूर्छित कर्मों का अंतिम परिणाम अहंकार होता

अगर वह पुण्य करेगा तो अमूर्छित हालत में करेगा, और अमूर्छा अगर आ जाय, एक क्षण को भी आ जाय तो फिर उसे खोया नहीं जा सकता है। ज्ञान के साथ एक ही खराबी है कि उसे खोया नहीं जा सकता है। कोई भी ज्ञान की किरण आप में फूट जाय, उससे फिर आप वंचित नहीं हो सकते। उसे फिर भुलाया नहीं जा

सकता, वह फिर आपका साथ हो जायेगी।

एक भारतीय साधु था—बोधि धर्म। वह चीन गया। वहां एक बादशाह था वू, उसने बड़े मंदिर बनवाये, बड़ी मूर्तियां बनवायीं, बड़े शास्त्र छपवाये। उसने करोड़ों रुपये खर्च किये। जब बोधि धर्म गांव गया, चीन की सीमा उसने पार की तो वू ने

है। अमूर्छित कर्मों का अंतिम परिणाम निरहंकारिता होता है। मूर्छा में जो भी कर्म होंगे उनसे 'मैं' मजबूत होता चला जाता है, अमूर्छा में जो कर्म होंगे उनसे 'मैं' पिघलता और विलीन होता चला जाता है।

●●

उसका स्वागत किया। स्वागत करने के बाद उससे कान में पूछा पास जाकर कि मैंने इतना खर्च किया है, इतने मंदिर बनाये, इतनी मूर्तियां, इतने शास्त्र छपाये। मुझे क्या फल होगा? स्वाभाविक था यह पूछ लेना। आप भी पूछना चाहेंगे कि मैंने इतना उपवास किये, क्या फल होगा? मैं इतनी बार मंदिर गया वर्ष में, क्या फल होगा? मैंने इतनी बार गीता पढ़ी, क्या फल होगा? मैंने इतनी बार रामायण करवा दी है घर में तो क्या फल होगा? इसने भी पूछना चाहा कि मैंने इतना व्यय किया है, इसका क्या फल होगा? वह बोधि धर्म बोला "कुछ भी नहीं। कोई फल नहीं होगा, उलटा पाप तुझे लगा। पाप तुझे इसलिए लगा कि तुझे यह अहंकार और उत्पन्न हुआ कि मैंने इतना किया, मैं करने वाला हूं और इतना मैंने किया यह दम्भ और उत्पन्न हुआ।"

यह स्मरणीय है, मूर्छित कर्मों का अंतिम परिणाम अहंकार होता है। अमूर्छित कर्मों का अंतिम परिणाम निरहंकारिता होता है। मूर्छा में जो भी कर्म होंगे उनमें 'मैं' मजबूत होता चला जाता है, अमूर्छा में जो कर्म होंगे उससे 'मैं' पिघलता और बिलीन होता चला जाता है।

इस दृष्टि को अगर समझेंगे, विचार करेंगे तो और तरह से पूरी बात आपको सोचनी पड़ेगी। तब प्रश्न कर्मों का बिलकुल नहीं है, कर्त्ता का हो जायेगा। मेरे लिए प्रश्न कर्मों का बिलकुल नहीं है, सच में हो भी नहीं सकता कर्मों का प्रश्न। विचारणीय मेरे कर्म नहीं हैं, मैं हूं। और अगर मैं गलत हूं तो मुझसे गलत कर्म निकलते हैं और अगर मैं ठीक हूं तो मुझसे ठीक कर्म निकलते हैं।

अभी आम तौर से तो हम उस

आदमी को तो छोड़ देते हैं विचार के बाहर, जिससे कर्म निकल रहे हैं और कर्मों का फुटकर विचार करते हैं कि कौन-सा कर्म ठीक है, कौन-सा गलत है? यह असंभव है कि जो आदमी वेश्यालय जाता है वह मंदिर भी जा सके। मंदिर जा सकता है। कौन-सी दिक्कत है? लेकिन मैं कहता हूं कि जो वेश्यालय जाता है वह मंदिर भी जा सके, यह असंभव है। और अगर वह मंदिर में भी जायेगा तो वैसे ही मूर्छित जायेगा जैसे मूर्छित वेश्यालय की सीढ़ियां उसने पार की हैं। ठीक वैसे मूर्छित मंदिर की सीढ़ियां पार करेगा। यह भी मैं मानता हूं कि जो मंदिर जा सकता है उसके लिए वेश्यालय जाना असंभव है। हो सकता है कि वह कभी वेश्यालय में भी चला जाय, लेकिन वह वैसे ही जायेगा जैसे मंदिर में गया था, वैसे ही निर्विकार और वैसा ही शांत वेश्यालय में भी प्रवेश कर जायेगा।

अगर मनुष्य भीतर ठीक हुआ है तो उससे गलत होना असंभव है, क्योंकि जो भी कर्म निकलता है वह मेरे भीतर से निकलता है। आकस्मिक अनायास नहीं है, कुछ भी एक्सिडेंटल नहीं है, मुझसे निकल रहा है, मेरे भीतर से पैदा हो रहा है। एक गुलाब के पौधे पर गुलाब के फूल लग जाते हैं, चमेली के फूल कभी नहीं लगते। गुलाब के फूल आकस्मिक नहीं हैं। गुलाब के फूल के भीतर जो क्षमता है वह बाहर फूलों में आ जाती है, गुलाब बन जाते हैं। आपके भीतर जो व्यक्ति है, आपके कर्मों में वह बाहर निकल आता है और प्रगट हो जाता है। कर्म बिलकुल विचारणीय नहीं है, व्यक्ति विचारणीय है। और परिवर्तन कर्मों का नहीं करना, व्यक्ति का करना है।

यानी मैं आपसे नहीं कहता कि झूठ बोलना छोड़ दें, मैं आपसे नहीं कहता कि हिंसा करना छोड़ दें, मैं आपसे नहीं कहता कि चोरी करना छोड़ दें, यह नासमझ कहते होंगे। मैं यह बिलकुल नहीं कहता कि आप छोड़ दें। यह आप छोड़ ही कैसे सकते हैं? अभी जिस तरह के आदमी आप हैं, आप यही करेंगे। और अगर जबरदस्ती करके छोड़ा तो दूसरी तरफ से फिर यही करेंगे, आप बच नहीं सकेंगे। आपसे फूल ही निकलेंगे जो आपसे निकल सकते थे। तो मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप इनको छोड़ दें। मैं आपसे कहता, आप दूसरे व्यक्ति हो जायं। कर्म न बदलें, भीतर जो व्यक्ति-चैतन्य है उसको बदलें वह अगर बदल गया तो फूल दूसरे आने शुरू हो जायेंगे। बिल्कुल बात उल्टी हो गयी मेरे हिसाब से। सामान्यतया सोचा जाता है, जो पुण्य कर्म करेगा, उसका व्यक्तित्व बदल जायेगा और

मैं कहता हूं जिसका व्यक्तित्व बदल जायेगा उसके कर्म बदल जायेंगे।

कर्मों से व्यक्तित्व परिवर्तित नहीं होता, व्यक्ति के परिवर्तन से कर्म परिवर्तित होता है।

प्रश्न : अगर धर्म व्यक्ति केन्द्रित है और व्यक्ति के ही लिए सब धर्म है, तो फिर समाज का क्या होगा ?

भगवान श्री : यह प्रश्न बड़ा संगत मालूम पड़ता है कि अगर धर्म सब व्यक्ति केन्द्रित है और व्यक्ति की ही चिंता है और सब को अपनी-अपनी फिक्र करनी है तो फिर सबका क्या होगा। तो इस समाज का क्या होगा ? लेकिन एक बात हम भूल जाते हैं। समाज है कहां ? कभी समाज से आपका मिलना हुआ ? कभी समाज से कोई साक्षात्कार हुआ ? कभी समाज से कोई मुलाकात हुई ? आज तक समाज से कभी मिलना हुआ, नहीं ? समाज को खोजकर भी आप कहीं पकड़ नहीं पा सकेंगे। जब भी पकड़ में आयेगा, व्यक्ति पकड़ में आयेगा। जब भी मुलाकात होगी, व्यक्ति से मुलाकात होगी। समाज कहीं है नहीं, समाज केवल शब्द है। समाज केवल एक संज्ञा है—व्यक्ति है। **व्यक्तियों के अन्तर्संबंधों (इन्टर रिलेशनशिप) का नाम समाज है—समाज कोई चीज नहीं है।** समाज हमारे संबंधों का इकट्ठा नाम है। हम जितने लोग बैठे हैं, सब एक दूसरे से संबंधित हैं तो एक समाज बन जायेगा। हमारे सारे सम्बन्धों के इकट्ठे जोड़ का नाम समाज है। वह जो हमारी रिलेशनशिप है एक दूसरे से, वह जो इन्टर-रिलेशनशिप है, उसी का नाम समाज है। समाज कोई है नहीं। समाज व्यक्तियों के जोड़ का नाम है। व्यक्ति जैसे होते हैं, अन्तिम जोड़ का फल वैसा हो जाता है। व्यक्ति जैसे होते हैं समाज वैसा हो जाता है। **परिवर्तन व्यक्ति में अगर हो तो समाज परिवर्तित हो जायेगा।** अगर मूर्छित लोग हैं तो समाज मूर्छित होगा। और मूर्छा कई गुनी हो जायेगी। दस मूर्छित लोग हैं तो समाज मूर्छित होगा, और मूर्छा कई गुनो हो जायेगी। दस मूर्छित लोग हैं तो दस गुनी ही मूर्छा नहीं होगी, सैकड़ों गुनी हो जायेगी। क्योंकि दस लोगों के मूर्छित कर्म आपस में मिलकर इतना संघर्ष, इतना उपद्रव पैदा करेंगे

(दुनिया में इस समय तीन अरब लोग हैं। अगर ये तीन अरब लोग मूर्छित हैं तो तीन अरब लोगों के मूर्छित कर्म मिलकर जो रूप उपस्थित कर रहे हैं, वह हमारे सामने है।)

कि इकट्ठा परिणाम दस से बहुत ज्यादा होगा। यानी जोड़ न होगा, गुणनफल होगा। दुनिया में इस समय तीन अरब लोग हैं। अगर ये तीन अरब लोग मूर्छित हैं तो तीन अरब लोगों के मूर्छित कर्म मिलाकर जो रूप उपस्थित कर रहे हैं, वह हमारे सामने है।

अगर व्यक्ति अमूर्छित होंगे तो समाज का एक अमूर्छित रूप प्रगट होगा। धर्म का जोर व्यक्ति पर है, क्योंकि व्यक्ति ही सत्य है। और समाज व्यक्ति का ही फल है। जैसा व्यक्ति वैसा समाज होगा। तो जब हम यह कहते हैं कि अपनी फिक्र करो—अगर आपने अपनी फिक्र की तो सबकी फिक्र अपने आप हो जायेगी। और अगर आपने सबकी फिक्र की और अपनी फिक्र नहीं की तो किसी की फिक्र नहीं होगी। क्योंकि सब तो कहीं हैं ही नहीं। जो समाज की फिक्र कर रहा है और अपनी फिक्र नहीं कर रहा वह अपनी तो कर ही नहीं रहा है, वह किसी की भी नहीं कर रहा है। समाज की फिक्र एक मिथ, एक कल्पना, एक झूठी बात है, एक कहानी है। अपनी फिक्र एक वास्तविक तथ्य है। दीख सकता है कि अपनी फिक्र करना बड़े स्वार्थ की बात है, लेकिन हम यहां बीस लोग बैठे हैं, अगर हम बीस ही लोग अपनी फिक्र कर लें तो बीसों लोगों से मिलकर जो समाज बनता है, उसकी फिक्र पूरी हो जायेगी। और अगर हम बीस ही लोग, अपने को छोड़कर बाकी उन्नीस की फिक्र करें, ऐसा बीस ही लोग करें कि अपनी फिक्र छोड़ दें, बाकी उन्नीस की फिक्र करें तो इस कमरे में फिक्रें तो बहुत होंगी, परिणाम कुछ भी नहीं हो सकेगा। परिणाम इसलिए कुछ नहीं हो सकता कि मैं अपने जीवन में तो कोई परिवर्तन कर सकता हूं, किसी दूसरे के जीवन में क्या परिवर्तन कर सकता हूं। मैं दूसरे पर आरोपित कर सकता हूं जबरदस्ती जबकि वह दूसरा भी दूसरे पर आरोपित करने में लगा होगा। **जीवन क्रांति का बुनियादी सूत्र अपने में परिवर्तन करना है, दूसरे में परिवर्तन करना नहीं है।**

सूत्र बुनियादी परिवर्तन का अपने से शुरू होगा और समाज के परिवर्तन की जो चिन्ता है यह परिणामदायी नहीं है। **तो धर्म निश्चित वैयक्तिक है। समाज से उसका कोई भी वास्ता नहीं। इसलिए वास्ता नहीं कि समाज तो है ही नहीं, व्यक्ति हैं। वे ठोस इकाइयां हैं। उनमें कोई परिवर्तन हो, वह परिवर्तन सब पर फलित होगा?**

प्रश्न : अगर सारे व्यक्ति अपने अपने उत्कर्ष में लग जायं तो राष्ट्र का क्या होगा?

भगवान श्री :

राष्ट्र का उत्कर्ष करना है, और सारे व्यक्ति अगर अपनी-अपनी आत्म-साधना में लग जायं तो राष्ट्र का क्या होगा? जैसे कि शांति उत्कर्ष की विरोधी है। जैसे कि व्यक्तियों का अपना आत्मिक जीवन को उपलब्ध कर लेना राष्ट्र की उन्नति में बाधक है। प्रश्न इस भांति से यह ख्याल देता है। और यह उनका प्रश्न नहीं, बहुत लोगों का प्रश्न है पूरे मुल्क में। यह डर है कि अगर व्यक्ति शांत हो जाय, आत्मा को उपलब्ध हो जाय तो शायद संसार के लिए निरुपयोगी हो जायेगा। इससे ज्यादा और गलत कोई बात नहीं हो सकती। अशांत आदमी तो विकास में सहायक है और शान्त आदमी बाधक हो जायेगा, यह बड़ी अजीब बात है। अगर पागलों से यह पूछा जाय कि आप सब स्वस्थ हो जायं और वह यह कहने लगें कि सब स्वस्थ हो जायेंगे तो फिर राष्ट्र का क्या होगा? पागल अगर यह कहें कि फिर सब स्वस्थ हो जायेंगे तो फिर राष्ट्र का क्या होगा? तो उनका प्रश्न जितना संगत होगा उतना ही प्रश्न यह भी संगत है।

मैं तो यह कह रहा हूं कि जब आप भीतर शांत होते हों तो आपकी शांति किसी के भी जीवन में और किसी के भी विकास में बाधा नहीं हो सकती, बल्कि प्रत्येक के विकास में सहयोगी हो जायेगी। उसके कारण हैं। अशांति अनिवार्य रूप से दूसरों के जीवन में बाधा उत्पन्न करती है। अशांत आदमी को बाधा उत्पन्न करने में सुख मिलता है। शांत व्यक्ति अनिवार्यतया दूसरों के जीवन में बाधा तो उत्पन्न करता ही नहीं, लेकिन शांति के कारण उसमें करुणा पैदा होना शुरू हो जाती है। अशांति के कारण हिंसा पैदा होती है। शांति के कारण करुणा पैदा होती है। उससे जितना बन पड़े, वह सहयोगी हो जाता है। तो अगर आत्मिक रूप से सारे लोग अपने भीतर जीवन में उतर रहे हों तो राष्ट्र का या समाज का कोई अहित होने को नहीं है।

यह उनको एक और ख्याल बैठा हुआ है और वह ख्याल, संन्यासियों की जो परम्परा सारी दुनिया में पिछले दिनों चली है उसकी वजह से बैठ गया है। हमको ख्याल बैठा हुआ है कि जो व्यक्ति भी आत्म-साधना में लगेगा वह संसार के प्रति विमुख हो जायेगा वह संसार छोड़कर भाग जायेगा। यह बात बिल्कुल ही गलत है। यह हो सकता है कि शांति की साधना के समय थोड़े दिन उसे संसार की तरफ पीठ कर लेनी पड़े, लेकिन जैसे ही वह शांति को उपलब्ध होगा संसार की तरफ वापस उसका मुंह हो जायेगा। हमने महावीर को घर छोड़कर जंगल जाते तो देखा,

हमने यह ख्याल नहीं किया कि बारह वर्ष के बाद ये जंगल छोड़कर वापस बस्ती में कैसे आ गये। महावीर को हमने राज-पाट छोड़कर जाते हुए देखा हैं पर हम यह बात भूल जाते हैं जो कि उनकी जिन्दगी का दूसरा और ज्यादा महत्वपूर्ण हिस्सा है कि वह वापस फिर वन को छोड़कर लोगों के बीच कैसे आ गये। जिस संसार की तरफ एक दिन पीठ की थी उसी तरफ वापस मुँह कैसे हो गया। यह संभव है कि आप शांति की साधना करें, थोड़ा आपको उदासीन होना पड़े, थोड़ा आपको घण्टे दो घण्टे चौबीस घण्टे में से अलग हो जाना पड़े, लेकिन शांति की उपलब्धि पर यह संभव नहीं है कि आपको अलग हो जाना पड़े, तब तो आप बिल्कुल बीच में हो जा सकते हैं।

शांत आदमी को डर नहीं होगा, अशांत आदमी को डर हो सकता है। शांत व्यक्ति जितनी सक्रियता में उतर सकता है, अशान्त कभी नहीं उतर सकता, क्योंकि अशान्त के भीतर इतनी सक्रियता होती है कि बाहर वह सक्रिय नहीं हो पाता। शान्त के भीतर कोई सक्रियता नहीं होगी इसलिए बाहर उसका जीवन अनन्त कर्म का जीवन हो सकता है।

संन्यास संसार का विरोधी नहीं है। बल्कि मेरे हिसाब में तो संन्यास को जो उपलब्ध करता है वही व्यक्ति पूरे संसार के लिए उपयोगी हो जाता है। **यानी गृहस्थ मैं उसको कहूंगा, जो थोड़े लोगों के लिए उपयोगी है। और संन्यस्थ मैं उसे कहूंगा जो सबके लिए उपयोगी है।** संन्यास का कोई विरोध नहीं है। आत्म-साधना का कोई विरोध नहीं है। आप अपने को साधते हैं, इससे कोई जगत में विरोध पैदा नहीं होता। और दूसरी बात आपको कह दूं, यह जो ख्याल पैदा हुआ है; जैसे अगर मैं किसी को कहूं कि आप स्वास्थ के लिए थोड़ा व्यायाम करो तो वह यह कहने लगेगा कि अगर सब लोग ऐसा व्यायाम करने लगें, तो फिर राष्ट्र का क्या होगा। उसको ख्याल ऐसा पैदा होता है जैसे कि चौबीस घण्टे वह व्यायाम ही करे। यह बात ठीक है कि अगर चौबीस घण्टे वह व्यायाम करे तो राष्ट्र बड़ी दिक्कत में पड़ जायेगा। **अगर सारे लोग चौबीस घण्टे व्यायाम करें तो राष्ट्र बड़ी दिक्कत में जरूर पड़ जायेगा। लेकिन व्यायाम चौबीस घण्टे नहीं किया जाता।** अगर मरना हो तो बात दूसरी है। जीना हो तो व्यायाम चौबीस घण्टे नहीं किया जा सकता। जीने के लिए थोड़ा-सा व्यायाम काफी है। व्यायाम आधे घण्टे होगा, लेकिन स्वास्थ के परिणाम चौबीस घण्टे हो जाते हैं।

तो आध्यात्मिक साधना कोई चौबीस घण्टे नहीं करनी होती। कोई

साधना चौबीस घण्टे नहीं करनी होती। साधना तो अल्प समय में ही करनी होती है, उसके परिणाम चौबीस घण्टे पर हो जाते हैं। अगर आप आधा घण्टे भी परिपूर्ण शान्त होने का प्रयोग करते हैं तो आप पायेंगे कि चौबीस घण्टे में अपने आप एक शांति परिव्याप्त हो गयी है। आपको चौबीस घण्टे शांत होने के लिए थोड़ा उपाय करना होगा। अगर आधा घण्टे को आप प्रकाशित होने का उपाय करते हैं तो आप पायेंगे कि चौबीस घण्टे पर इस प्रकाश की धीमी धारा व्याप्त हो गयी है। चौबीस घण्टे मंदिर में थोड़े बैठे रहना होगा। अगर आप आधा घण्टा मंदिर में सच में बैठे हैं तो आप पायेंगे कि आपके चौबीस घण्टे में आप जहां भी प्रवेश करते हों वहां मंदिर मौजूद है किसी न किसी रूप में। यानी दुकान छोड़-कर मंदिर में नहीं बैठना होगा, मंदिर में थोड़ी देर बैठे तो मंदिर ही दुकान में उपस्थित हो जायेगा तो ही साधना वास्तविक है और अगर दुकान का इतना डर हो कि जब मंदिर में ही बैठे रहें तभी दुकान से दूर रहते हैं तो फिर बात गलत है, तो साधना जरूर कोई अर्थ की नहीं हो सकती। तो जरूर यह खतरा हो सकता है कि सभी लोग मंदिर में बैठे रहें तो फिर दुकान और मकानों का क्या होगा।

आध्यात्मिक जीवन की साधना कोई चौबीस घण्टे का काम नहीं है। थोड़ी देर उस तरफ अपने में प्रयास करने हैं, थोड़ी देर उस सुराख को खोदना है और चौबीस घण्टे जो सामान्य आपके जीवन में चलता है उसे चलने देना है। लेकिन वह सुराख अगर ठीक से फूटा तो आपके चौबीस घण्टे के जीवन में परिवर्तन शुरू हो जायेंगे, आपके बिना जाने।

एक आदमी बीज बो देता है अपने बगीचे में तो कोई चौबीस घण्टे बीज के पास थोड़े ही बैठा रहता है। एक आधा घण्टा उसकी देखभाल कर लेता है, फिक्र कर लेता है कि जान-वर उसे चर तो नहीं जाते हैं, बाड़ लगा देता है। आधा घण्टा सुबह उसकी फिक्र कर लेता है। कोई चौबीस घण्टे उसके पास बैठकर उस पौधे को बढ़ाना थोड़े ही पड़ता है। आधा घण्टे की फिक्र लेकिन पौधे में बढ़ना शुरू हो जाता है। एक दिन पौधा वृक्ष हो जाता है और फूल से भर जाता है। अब कोई भी कहने लगे कि हम कैसे पौधा लगायें, हमको दूसरे भी काम करने हैं, तो हम उसको कहेंगे कि आप नासमझी की बातें कर रहे हैं। पौधा आपके किसी काम में विरोधी नहीं है। आध्यात्मिक जीवन के बीज डालना कोई चौबीस घण्टे का काम नहीं है। उसे डालें आधा घण्टा, घण्टा उसकी फिक्र करें और आपके चौबीस घण्टे के जीवन

में क्रमशः परिवर्तन आना शुरू होगा और एक दिन आप पायेंगे कि चौबीस घण्टे में वह परिव्याप्त हो गया है और आपको उसके लिए कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ रही है। यानी आपकी दूसरी चेष्टाओं से धर्म का कोई विरोध नहीं है। धर्म की साधना अपने आप में प्रतियोगी नहीं है आपकी किसी भी इच्छा से। आप दुकान करते हैं, आप नौकरी करते हैं, आप कुछ और करते हैं—धार्मिक साधना आपके करने से विरोधी नहीं है। इसलिए विरोधी नहीं है कि धार्मिक साधना कोई सांसारिक काम नहीं है, जिसकी और सांसारिक कामों से प्रतियोगिता और कंपटीशन हो। इसे आप जरा ठीक से समझ लेना। कंपटीशन और प्रतियोगिता उन चीजों में होती है जो एक ही तल की होती हैं। एक आदमी एक दुकान कर रहा है। उसकी सामर्थ्य इतनी है कि वह दुकान कर सके और आप उससे कहें कि दूसरी और खोल लो तो वह कहेगा, यह तो बड़ा मुश्किल होगा। दूसरी हम खोल लेंगे तो इसकी फिर कौन फिक्र करे। दो दुकानों में विरोध हो सकता है, दो कामों में विरोध हो सकता है।

धर्म कोई काम नहीं है, धर्म विश्राम है। आपके किसी काम का उसका विरोध नहीं है, न कोई प्रतियोगिता है। आपके सारे काम चलते हुए हों, वह बिल्कुल ही अलग बात है जिसका किसी से कोई विरोध नहीं, कोई मतलब नहीं है। इसे थोड़ा समझें, आपके सब काम दूसरों से संबंधित हैं। यह ऐसा काम है जिसका दूसरों से कोई संबंध नहीं है; आपकी एक पत्नी है, और आप दो पत्नियाँ और ले आयें तो उपद्रव है। क्योंकि वही संबंध दो स्त्रियों से और होगा और संघर्ष शुरू होगा। लेकिन आपकी एक पत्नी है और आप अपने से संबंधित होना शुरू हो जायँ तो कोई विरोध नहीं होने वाला है क्योंकि यह कोई संबंध नहीं है किसी और से। इसकी किसी और से प्रतियोगिता नहीं है। अपने से संबंधित होने में किसी सम्बन्ध का कोई विरोध नहीं है। यह मामला ही बहुत भिन्न और अलग है।

मैंने कहा, सारे तो काम हैं, ये विश्राम है। और सारे दूसरों से सम्बद्ध हैं, यह अपने से सम्बद्ध है। और सारी क्रियाएं बाहर जाती हैं, यह क्रिया बाहर नहीं जाती, भीतर जाती है। तो आपका इससे कोई विरोध नहीं है, कोई भी विरोध नहीं है। इससे जीवन की किसी धारा में कोई विरोध पैदा नहीं होगा, बल्कि जब यह आंतरिक शांति उत्पन्न होने लगेगी तो जीवन की सारी धाराएँ समृद्ध हो जायेंगी। अगर आप धर्म को उपलब्ध हुए तो लोग सोचते हैं

कि सारा प्रेम छूट जायेगा। मैं ऐसा नहीं सोचता। मैं यह सोचता हूं, पहली दफा प्रेम उत्पन्न होगा। आप जिस मोह को प्रेम समझे हैं वह प्रेम नहीं है। मोह तो छूट जायेगा, प्रेम तो अन्तः से उत्पन्न होगा। आप सोचते हैं, सारे लोगों से सम्बन्ध टूट जायेंगे और मैं आपसे कहूंगा कि अभी तो आपका किसी से सम्बन्ध नहीं है। पहली दफा आप संबंधित होंगे। पहली दफा रिलेशनशिप पैदा होगी, अभी तो कोई रिलेशनशिप नहीं है। अभी तो अपना-अपना स्वार्थ है, किसी का किसी से कोई मतलब नहीं है, किसी का किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है। और अभी जिसको हम प्रेम समझ रहे हैं वह मोह है और मोह भी ऐसा है कि वह भी बुनियाद में स्वार्थ है। तब वास्तविक प्रेम उत्पन्न होगा। धर्म आपसे कुछ भी छीनेगा नहीं। जो-जो व्यर्थ है उसे अलग कर देगा, जो-जो सार्थक है उसे वापस आपको दे देगा। इसलिए धर्म से कोई आदमी रंक और भिखारी नहीं बनेगा, समृद्ध हो जायेगा।

तो मैं कोई विरोध नहीं देखता, संसार में और धर्म में, आत्म साधना में, और किसी तरह के किसी विकास में कोई विरोध नहीं है।

प्रश्न : आंतरिक आनन्द की स्थिति, यानी क्या ?

भगवानश्री : अभी हम दो तरह की स्थितियाँ जानते हैं—एक तो दुख की स्थिति है और एक सुख की स्थिति है। उनको बताने को किसी को कोई जरूरत नहीं है। दुख की स्थिति वह है जिसमें से हम बाहर होना चाहते हैं, जिसके भीतर हम जरा भी नहीं रुकना चाहते। और सुख की स्थिति वह है जिसके भीतर ही हम रुका रहना चाहते हैं और डरे रहते हैं कि कहीं बाहर न हो जायँ। दुख में एक तनाव होता है कि बाहर हो जायँ और सुख में एक तनाव होता है कि कहीं बाहर न हो जायँ। दुख से हटना चाहते हैं, सुख को पकड़ रखना चाहते हैं। आनन्द की स्थिति इन दोनों से भिन्न है। एक ऐसी चेतना की स्थिति जिससे न तो आप बाहर होना चाहते हैं और न आप इतने भयातुर होते हैं कि कहीं कोई छूट न जाये, इससे घबराये हुए होते हैं। आनन्द की वह टेंशनलेस स्थिति है जहाँ न छूटने का डर होता है, न छोड़ने की इच्छा होती है। यानी मेरा मतलब यह हुआ, दो तरह के टेंशन हैं दुनिया में--एक दुख का और एक सुख का। दो तरह की उत्तेजनाएँ हैं दुनिया में—एक सुख की और एक दुख की। दुख की उत्तेजना अप्रीतिकर है, सुख की उत्तेजना प्रीतिकर है। दुख की उत्तेजना के पीछे आकांक्षा है कि सुख की

उत्तेजना मिल जाय। सुख की उत्तेजना के पीछे भय होता है कि कहीं दुख की उत्तेजना न आ जाय। मेरा मतलब हुआ, दुख के बीच सुख की धारणा उपस्थित रहती है। वे एक ही सिक्के के दो हिस्से हैं। एक उपस्थित रहता है, दूसरा अनुपस्थित रहता है, ऐसा मत सोचना आप। दूसरा नीचे रहता है। मौजूद रहता है। जब दुख में आप होते हैं तब आकांक्षा के रूप में सुख मौजूद रहता है। और जब आप सुख में होते हैं तो भय के रूप में दुख मौजूद होता है।

सुख-दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक ऐसी चेतना की स्थिति है जहाँ न सुख है, और न दुख है। जहाँ दोनों ही तनाव नहीं है उसका नाम आनन्द है। आनन्द सुख का पर्यायवाची नहीं है। सुख दुख का जहाँ अभाव है, उस स्थिति का नाम आनन्द है। दुख के अभाव का नाम सुख है। सुख के अभाव का नाम दुख है। सुख-दुख दोनों के अभाव का नाम आनन्द है। अब इसका क्या रूप हुआ? अनुत्तेजना। कोई उत्तेजना यहाँ नहीं है—न कुछ पाने की न कुछ खोने की, न कहीं जाने की न किसी से हटने की, न कहीं पहुंचने की। जहाँ कोई उत्तेजना नहीं है, उस परिपूर्ण शांति का नाम आनन्द है। शांति और आनन्द पर्यायवाची हैं। एक ही अर्थ रखते हैं। **उत्तेजना-शून्य चित्त-स्थिति का नाम आनन्द है।** उत्तेजना का नाम दुख है और सुख है। इसलिए यह संभव है कि सुख की उत्तेजना अगर ज्यादा बढ़ जाय तो दुख में परिणत हो जाती है। दुख की उत्तेजना अगर ज्यादा हो जाय, सुख में परिणत हो जाती है। वे दोनों उत्तेजनाएं हैं। दोनों ही उत्तेजनाएं हैं। आनन्द अनुत्तेजित स्थिति है। चित्त की टेंस स्थिति का नाम या तो सुख होगा, या तो दुख होगा। अगर प्रीतिकर है तो सुख, अगर अप्रीतिकर है तो दुख और चित्त की नानटेंस स्थिति का नाम, जब चित्त बिलकुल तना हुआ नहीं होता है, उस स्थिति का नाम आनन्द है। उसी आनन्द को पाने के लिए सारे धर्मों के उपाय हैं।

प्रश्न : शरीर और चेतना का क्या अंतर संबंध है? साधना से समाधि को कैसे उपलब्ध हुआ जा सकता है?

भगवान श्री : मनुष्य जो है वह एक इकाई नहीं है। उसका बीइंग जो है यूनिटरी नहीं है। उसका जो व्यक्तित्व है वह दोहरा है, उसमें द्वय है। एक तो उसका शरीर है जो पदार्थ से बना है और दूसरा उसका चैतन्य है जो आत्मा से बना है। मनुष्य के भीतर दो तल हैं। या दो

व्यक्तित्व हैं। एक पदार्थ का व्यक्तित्व है और एक चैतन्य का व्यक्तित्व है। तो जब हम कहते हैं कि हम, तो यह हम शब्द बड़ा गलत है। यह एक की सूचना नहीं, यह दो की सूचना है। जब हम कहते हैं दो तो यह दो की सूचना देता है। जब मैं कहता हूं कि मैं रात सोया। यह बात सच है कि मेरा एक हिस्सा जो पदार्थ से बना है, रात सोया हुआ था। और यह भी बात सत्य है कि मेरा एक हिस्सा जो कि चैतन्य से बना हुआ है वह रात जागा हुआ था और जानता था कि सो रहा है कोई। यानी मेरे मैं के दो हिस्से हैं, दो पार्ट हैं। एक तो मेरा शरीर है और एक मेरी चेतना है। मेरी चेतना कभी नहीं सोती है। सोने का प्रश्न ही नहीं है। वह जानती है, कौन सोया। मेरा शरीर सोता है, वह यंत्र है, थकता है और विश्राम चाहता है और वापस शक्ति पाने के लिए उसे विश्राम लेना होता है। शरीर सो जाता है, आप कभी नहीं सोते। जो नहीं सोता है, उसे जानना ही साधना है। जो सोता है उसे ही मान कर रहना जीवन को व्यर्थ कर देना है। जो सोता है वह मर जायेगा, जो नहीं सोता है वह नहीं मरेगा। वह अमृत है। इतने पुराने दिनों में निद्रा को भी अल्प मृत्यु ही समझा जाता रहा है। वह भी मृत्यु का ही रूप है। जो सोता है, वह एक दिन समाप्त हो जायेगा, बिल्कुल सो जायेगा। जो अभी सोने के बीच में जागा हुआ है, अगर हम उसको पहचान लें और जान लें तो हम मृत्यु के बीच में उसे जानेंगे जो कि नहीं सो रहा है। उसको ही जानना साधना है। वही पूछ रहे हैं कि साधना क्या करें, कैसे करें।

अभी तो बता ही सकता हूं चर्चा में थोड़ा-सा। तो सच में ही करनी है तो मेरे पास दो चार दिन रुक कर प्रयोग समझना चाहिए। यह मैंने कहा कि जो सो जाता है वही एक दिन जब अंतिम रूप से सो जाता है तो हम कहते हैं, मृत्यु हो गयी। और हमारे भीतर कुछ एक तत्व है जो जागता है और सुबह जागकर कहता है कि रात में बहुत गहरी नींद सोया। तो जो यह कहता है कि रात में बहुत गहरी नींद सोया, जरूर वह सोया नहीं होगा। तो अब रास्ता उसे जानने का क्या है जो कि नहीं सोता है। उसे जानने का एक ही रास्ता है। आपके भीतर जो भी सो सकता है उसे बिल्कुल सुला लें और सुलाते चले जायं, और जब आप ऐसे तत्व पर पहुंच जायं जिसको कि आप नहीं सुला सकते हो, कितना ही सुलायें, वह जागे ही रहता है, जागे ही रहता है, तो आप समझना कि आप अपने पर पहुंच गये। योग इससे अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उन सारे तत्वों

को सुलाने का नाम समाधि है जो सो सकते हैं। शरीर को सुला लें कि बिल्कुल सो गया, श्वास को बिल्कुल सुला लें कि सो गयी। मन को, विचार को बिल्कुल सुला दें कि सो गया। सब सो गया है और इस वक्त भी आपके भीतर कोई जागा हुआ है जो कि सो ही नहीं सकता, जिसे सुला ही नहीं सकते और जो आप स्वयं हैं। जो सबको सुला रहा है उसे स्वयं नहीं सुलाया जा सकता। वह जागेगा!

तो समाधि के दो चरण हैं– एक चरण देह को सुलाने का है, दूसरा चरण मन को सुलाने का है। देह को तो रोज रात हम सुला देते हैं, लेकिन वह भी हम नहीं सुला लेते। निद्रा आप नहीं लेते हैं, निद्रा आप पर आती है। इसलिये कभी न आये तो आपके हाथ में नहीं होता कि उसको आप ले आयें। आप थक जाते हैं तो नींद आती है। थकान है, जो आती है वह तो नींद है। और अगर आप अपनी शिथिलता से शरीर को छोड़ दें तो वह नींद न होगी, वह आसन हो जायेगा। जो अपने आप आ जाती है वह तो नींद है, वह तो प्राकृतिक है और एक आप अपनी तरफ से शरीर को छोड़ दें; जैसे वह मुर्दा है, उसमें कोई प्राण नहीं है तो वह साधना का हिस्सा हो जायेगा। शरीर पर अपने आप नींद आती है तब वह बिल्कुल मृत पड़ जाता है। आप अपनी तरफ से उसे मृत छोड़ दें तो साधना शुरू हो गयी।

एक आधा घन्टे को शरीर को बिल्कुल मृत छोड़ दें, थोड़े ही दिन भाव और अभ्यास करने से आप अनुभव करेंगे कि शरीर बिल्कुल मृत पड़ा हुआ है। अपने ही शरीर को आप देखेंगे, बिल्कुल मुर्दा, जड़ की तरह पड़ा हुआ है। अगर उस पर कोई चींटी भी चढ़ रही है तो वहां ऐसी मालुम पड़ रही है कि जैसे किसी के शरीर पर चढ़ रही है। थोड़े दिन के प्रयोग से आप जानेंगे कि जैसे किसी के शरीर पर चढ़ गयी है। उस पर अगर कोई पत्थर भी गिरा दे तो ऐसा लगेगा कि किसी के शरीर पर गिरा दिया। अगर शरीर को मृत करने का भाव और अभ्यास करेंगे तो थोड़े ही दिनों में शरीर बिल्कुल मृतवत् मालुम होगा। जैसे-जैसे भाव की प्रगाढ़ता होगी कि शरीर मृत होता जा रहा है वैसे-वैसे श्वास आपकी धीमी होती चली जायेगी। श्वास सूचक है। शरीर अगर जीवित है तो श्वास है, अगर शरीर मृत होता चला जा रहा है श्वास धीमी होती चली जायेगी। जब शरीर की साधना में परिपूर्णता आयेगी तो आप हैरान हो जायेंगे, शरीर अगर बिल्कुल मृत अवस्था में पड़ा होगा तो श्वास बिल्कुल स्थिर

हो जायेगी। श्वास का पता नहीं चलेगा। नींद में श्वास तेज हो जाती है, समाधि में श्वास विलीन हो जाती है। इसलिये नींद में और इस स्थिति में बहुत फर्क है। नींद में आपकी श्वास जितनी आप लेते हैं उससे बहुत तेज हो जाती है इसलिए आप गुर्राटा भी लेते हैं। श्वास बहुत तेज हो जाती है, क्योंकि सारे शरीर का यंत्र अपने को सुव्यवस्थित करने का प्रयोग करता है। सारे शरीर में सारी खराबी निकाली जाती है, सारी व्यवस्था होती है। आप, पूरा कारखाना शरीर का अपना काम करता है। श्वास की और ज्यादा जरूरत होती है, सारी सफाई होती है। और इसलिए इतनी तेज श्वास चलाने के लिए और इतनी बड़ी यांत्रिक सफाई के लिए आप अगर होश में रहें तो बाधा देंगे, इसलिए प्रकृति आपको बेहोश कर देती है। आप बाधा देंगे, कोई काम करेंगे, यह करेंगे, वह करेंगे शक्ति, जो पूरी शरीर की सफाई और व्यवस्था में लग रही है, दूसरे कामों में लगायेंगे, इसलिए प्रकृति आपको मूर्छित कर देती है। आपका शरीर बिल्कुल निर्भार होकर पड़ जाता है।

समाधि में दूसरी स्थिति होती है। शरीर की सफाई नहीं होती है, शरीर की सारी क्रियाएं शून्य होने लगती हैं। शरीर की सारी क्रियाएं बन्द हो जाती हैं और शरीर जड़ हो जाता है, मृत हो जाता है। इस अवस्था को मैं आसन कहता हूं, जब शरीर बिल्कुल मृतवत् हो। श्वास बिल्कुल धीमी होते-होते करीब-करीब न हो जायेगी। ज्ञात नहीं होगा कि आ रही है कि नहीं आ रही है। बहुत अल्प रह जायेगी। यह पहला हिस्सा है, इसको आसन कहता हूं।

दूसरा हिस्सा मन का है, उसको मैं ध्यान कहता हूं। शरीर बिल्कुल ऐसा हो जाये कि नहीं है तो आसन हो गया और मन ऐसा हो जाय कि नहीं है तो ध्यान हो गया। रात को शरीर को निढाल होकर पड़ जाता है, लेकिन मन चलता रहता है, विचार चलते रहते हैं। कोई दस पांच मिनट को रात्रि के किसी क्षण में विचार भी बन्द हो जाते हैं, स्वप्न भी बन्द हो जाते हैं। उस वक्त का नाम सुषुप्ति है। सुषुप्ति में आप अपनी आत्मा में होते हैं। चौबीस घण्टे में हर व्यक्ति थोड़ी देर को अपनी आत्मा में प्रविष्ट होता है। उस स्थिति का नाम सुषुप्ति है। और उसी स्थिति में आपको

> *(शरीर बिलकुल ऐसा हो जाये कि नहीं है तो आसन हो गया और मन ऐसा हो जाय कि नहीं है तो ध्यान हो गया।)*

आनन्द अनुभव होता है जब सुबह आप कहते हैं कि रात बड़ी गहरी नींद में मुझे आनन्द आया । और जिस रात गहरी नींद नहीं है, उस रात आनन्द नहीं आया । गहरी नींद से आनन्द है । वह सुषुप्ति के क्षण जब कि स्वप्न भी बन्द हो जाते हैं, आप अपनी आत्मा में प्रवेश करते हैं, वही प्रवेश आनन्द देता है । लेकिन वह भी मूर्छा में होता है । आप अपनी तरफ से वहां नहीं गये हैं, भेजे गये हैं । प्रकृति ने आपको भेजा है अपने भीतर । समाधि में आप अपनी तरफ से जाते हैं । तो एक अंग हुआ कि शरीर मृतवत् हो जाय । दूसरा अंग हुआ कि चित्त बिलकुल शून्य हो जाय, विचार विलीन हो जायं, चित्त में कोई विचार न रह जायं ।

शरीर को बिलकुल छोड़ देने से शरीर मृतवत हो जाता है और चित्त को बिल्कुल छोड़ देने से, उसकी सारी पकड़ छोड़ देने से चित्त शून्य हो जाता है । चित्त की पकड़ छोड़ना । पकड़ दो तरह की है चित्त पर हमारी एक तो पकड़ यह है हमारी कि चित्त में कोई बुरी चीज न आ जाय तो हम ऐसा हाथ रोके रखते हैं कि कोई चित्त में बुरा विचार न आ जाय । और चित्त में जो भले विचार हैं, उनको हम पकड़े रहते हैं कि कहीं वह चले न जायं । जो हम सुख-दुख के साथ करते हैं, वही शुभ और अशुभ विचारों के साथ करते हैं । शुभ विचार को पकड़ते हैं, अशुभ विचार को धक्का देते हैं । पकड़ छोड़ने का अर्थ है : न आप धक्का दें, न आप पकड़ें—चित्त में जो आता हो जो जाता हो, आने दें, जाने दें; आप बिल्कुल तटस्थ होकर रह जायं, आपको कोई मतलब नहीं । जैसे किसी धर्मशाला के एक कमरे में बैठे हैं, लोग आ रहे हैं और जा रहे हैं और जा रहे हैं, आ रहे हैं । आपको कोई मतलब नहीं । आप अपने कोने में बैठें ।

चित्त में ऐसे तटस्थ साक्षी का प्रयोग कि आप सिर्फ देखने वाले मात्र रहें. जो आता है आये, जाता है जाये । न हमें किसी को रोकना, न हमें किसी को भेजना है । शुरू में दिक्कत होगी । क्योंकि बहुत दिन के रोके बुरे हुए विचार एकदम से प्रवेश कर जायेंगे और बड़ी घबड़ाहट है, क्योंकि कई दिन से रोका हुआ है दरवाजे पर उनको कि अन्दर मत आना । कई को भीतर दबाया हुआ है कि उठ मत आना । एकदम से विस्फोट होगा तब निकलेंगे । और जबरदस्ती जिन शुभ विचारों को रोक रखा है बहुत दिन से, जैसे हाथ छोड़ेंगे, वह सब पक्षी जो शुभ विचारों के हैं, एकदम उड़ जायेंगे । शुभ विचारों के पक्षी एकदम उड़ जायेंगे, अशुभ विचारों के जीव जन्तु आपके भीतर

एकदम खड़े हो जायेंगे। बहुत घबराहट होगी। इसी घबराहट की वजह से पकड़े हैं शुभ को, अशुभ को दबाये हुए। बुरे को दबाये हुए हैं, अच्छे को पकड़े हुए हैं। इसी स्थिति में हिम्मत और साहस का नाम तपश्चर्या है। इस स्थिति में, शुभ को छोड़ देने की, अशुभ को रोकने की छोड़ देने की। जो होता हो, हो, हम चुपचाप खड़े देखते रहें। बड़े साहस का बिन्दु है, बड़ी हिम्मत की जरूरत है। यह इतना विस्फोट होगा विकार का, लेकिन इसके पूर्व कि विकारों से मुक्ति हो, बिस्फोट होना जरुरी है। इसके पूर्व कि जिन विकारों को जन्मों-जन्मों से इकट्ठा किया, उनका विसर्जन हो, उनका उठना और उनका मुक्त होना जरूरी है। और इसके पहले कि वास्तविक शुभ का जन्म हो, जबरदस्ती जिस शुभ को पकड़ रखा है, उसका छोड़ देना जरूरी है।

शुभ छोड़ दें, अशुभ की रोक छोड़ दें। शुभ-अशुभ का विचार छोड़ दें, चुपचाप पड़े रह जायं और देखते रहें। कुछ ही दिनों में बहुत अशुभ का विकार उठेगा, उसे देखते रहें। तब शुभ के पक्षी उड़ जायेंगे, उन्हें उड़ते हुए देखते रहें। धीरे-धीरे आप हैरान होंगे कि सारे विकार का जो तूफान आया था वह विलीन होता चला जा रहा है। अगर आपने फिर पकड़ शुरू कर दी तो बात अलग है, अगर पकड़ नहीं की तो सारा तूफान विलीन हो जायेगा। कितनी ही बड़ी आंधी हो वह थोड़ी देर में शांत होती जायेगी, शान्त हो जायेगी। आखिर में आप पायेंगे, आंधी तो कोई भी नहीं है। न वहां शुभ है, न वहां अशुभ है। आप अकेले ही खड़े रह गये। न वहाँ कोई बुरा विचार है, न कोई वहाँ भला विचार है। न वहां पाप का कोई विचार है, न वहां पुण्य का कोई विचार है। आप वहाँ बिल्कुल अकेले ही खड़े रह जायं। उस लोनलीनेस में, उस अकेले खड़े होने की स्थिति में आपको उसका पता चलेगा, जो आप हैं। और उसका पता चलेगा, जो सोते समय सोता नहीं और मरते समय मरता नहीं। इस स्थिति का नाम ध्यान है। शरीर का मृतवत् हो जाना आसन है, चित्त का मृतवत्, शून्य हो जाना ध्यान है। इन दोनों के जोड़ का नाम समाधि है। समाधि में स्व का बोध संभव होता है।

यह तो मैं इतना ही कह सकता हूं फिलहाल, कभी इकट्ठे होते हैं तो इसका प्रयोग भी किया जा सकता है। यानी मैं आपको मरना सिखा सकता हूं। और जो मरना सीख ले उसको अमृत का पता हो जाता है।

● संकलन : *स्वामी कृष्ण कबीर*
बम्बई

माउण्ट आबू शिविर ५ :

विराट भगवत् लीला

आनंद शिला शिविर में बम्बई का चन्द्रकान्त मकीम कई बार बड़ी मीठी चुटकियाँ लेता था। एक दिन कहने लगा—तुम बड़े अजीब हो। हर बार कहते हो कि लिखा नहीं जाता, लिखा नहीं जाता, और हर बार लिखते चले जाते हो। उस दिन वहाँ उपस्थित सभी लोग हंस पड़े थे। मैं भी जोरों से हंसा था। स्वभावतः आज जब माउण्ट आबू शिविर (९ अप्रैल से १४ अप्रैल १९७३) की खबरें लिखने बैठा, अनायास उसका स्मरण हो आया। हँसी भी आयी और यह ख्याल भी आया कि मेरे कहने में गलती कहाँ है? सच ही, लिखा नहीं जाता, फिर भी लिखता हूं। लिखता हूं फिर भी लिखा नहीं जाता, लिखने में नहीं आता। इसमें गलत क्या है? खैर...

अब हम चलें माउण्ट आबू शिविर। और अच्छा हो कि भगवान श्री के गृह नगर जबलपुर (गाडरवारा से क्षमायाचना सहित) से चल कर माउण्ट पहुंचा जाय। अस्तु:

४ अप्रैल की संध्या ५ बजे .. जबलपुर रेलवे प्लेटफार्म, हावड़ा-बंबई मेल खड़ी है। बहुत से संन्यासी-संन्यासिनें नृत्यमग्न कीर्तन कर रहे हैं। 'रजनीश आये, आनंद लाए ..।' स्टेशन पर सभी ओर से लोग आकृष्ट होते चले आ रहे हैं। ट्रेन से भी उतरकर लोगों ने घेर लिया है। अब तो किसी को बताना नहीं पड़ता कि कौन हैं ये पागल लोग। हिन्दुस्तान के कोने-कोने के लोग जानते हैं कि यह रजनीश-शिष्य-मण्डली है। अब अगर कोई कुछ पूछता है तो यह कि कहाँ जा रहे हैं आप सब? क्या वहाँ रजनीश जी भी आयेंगे?... अब गाड़ी चल दी है। इस बार जबलपुर से कम मित्र चल पा रहे हैं। अभी फरवरी में आनंद शिला होकर आए हैं लोग। चलने वालों में स्वामी प्रेम चैतन्य, स्वामी दयाल भारती, स्वामी अनादि सरस्वती एवं स्वामी स्नेह भारती। स्वामी आनंद विजय २ दिन पूर्व ही जा चुके हैं। विदा के समय स्वामी प्रेम विजय व मा योग संबोधि की आँखों से आँसू छलक पड़े। जो शिविर का आनंद एक बार भी ले आये हैं, और फिर शिविर होने पर किसी असुविधा वश नहीं जा पाते तो

जाने वालों को बिदा देते समय उन्हें शिबिरों में बरसती भगवान की अनुकम्पा का स्मरण हो आता है और आंसू निकल आते हैं। उस समय इतनी करुणा का अनुभव होता है कि जी करता है मैं भी उतर पड़ूं। कोई भी प्रेमी उस आनंद से वंचित हो रहा है तो मैं भी वंचित हो जाऊं। पर ये भावना की बातें हैं।

गाडरवारा स्टेशन पर स्वामी निकलंक भारती, स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व को गाड़ी में बिठाने आए हैं। चाचा जी आदि पीछे दूसरी ट्रेन से आवेंगे। भुसावल में रायपुर के स्वामी चैतन्य बीतराग व अन्य पाँच-सात संन्यासियों से मिलन। बड़ौदा से हम लोगों के ही डिब्बे में आए एडवोकेट के० के० देसाई व पाँच-सात अन्य मित्र। सभी शिबिर चल रहे हैं। बड़ौदा प्लेटफार्म पर एक नवयुवक मिला। इंजीनियरिंग कालेज का छात्र है। वह बड़ा भाव-विह्वल था। उसने पूछा, बम्बई की मा योग सुजाता व भगवान श्री किस ट्रेन से आवेंगे। भगवान श्री जिस ट्रेन से आते हैं सदा, वह ट्रेन बताया। सुजाता जी की ट्रेन नहीं मालूम थी। हमने पूछा, सुजाता जी आपकी कौन है ? वह जैसे अपने भीतर और गहरे चला गया। कहने लगा--यह मत पूछें कि वह मेरी कौन हैं ? वे मेरी माँ हैं मां ! यह कहते हुए उसका व्यक्तित्व इतना भावपूर्ण हो गया कि जी करता था उसे अपनी छाती के भीतर समाविष्ट कर लूं। शायद उसने मेरे इन भावों को हृदय-आलिगन के समय महसूसा भी हो।

बड़ौदा व अहमदाबाद के बीच एक और मजेदार बात घटी जिसे बताने को मन करता है। खास बात नहीं है फिर भी खास बात है। हम सब जिस बर्थ पर बैठे हैं उसके सामने की बर्थ पर एक वृद्धा बैठी हैं। देखने में बहुत सम्पन्न नहीं लगतीं। पर शायद उनका हृदय सम्पन्न रहा होगा। तभी तो हम लोगों ने बेयरे को चाय का आर्डर दिया और उसका बिल (तीन रुपये) उस बृद्धा माँ ने चुकाया। हमने लाख चाहा कि वह पैसे न दे, पर वह नहीं मानी तो नहीं मानी। वे बहुत प्रसन्न व अनुगृहीत थीं जो हमने उनके द्वारा पैसे चुकाये जाना स्वीकार कर लिया था। मैंने मन ही मन परमात्मा को स्मरण किया और उस बृद्धा के लिए प्रार्थना की।

अहमदाबाद पहुंचने के घण्टे भर पूर्व डिब्बे में ही कीर्तन प्रारम्भ...। स्वामी अनादि सरस्वती के मार्मिक भजन 'जय रजनीश हरे'...'करुणा कारण धरे शरीरा...।' इन पंक्तियों पर सभी के हृदय आर्द्र हो उठे। सारे डिब्बे के लोग वहीं एकत्र हो गए व सभी मंत्रमुग्ध से अहमदाबाद

तक खड़े रहे व कीर्तन सुनते रहे 'रजनीश आना, मेरे घर आना .।" मुझे अनायास स्मरण हो आया कि एक तरफ राजस्थान सरकार की संसद में व एकाध अखबारों में विपरीत चर्चा, दूसरी ओर आनन्दमग्न नृत्य में डूबे माउण्ट जाते हुए ये संन्यासी। मुझे इस क्षण ये संन्यासी ऐसे ही लगे जैसे पतंगे आनंद व नृत्य में डूबे प्रज्ज्वलित दीपक की ओर बढ़ते हैं। हम भी तो उन पतंगों की ही भाँति अपनी अस्मिता को जलाने महासूर्य रजनीश की ओर बढ़ रहे हैं। इतने-इतने लोगों के नृत्य व आनन्द का स्रोत एक रजनीश ही तो हैं। सच, हमारे भाग्य पर चाँद-तारों को ईर्ष्या होती होगी।

अहमदाबाद रेलवे स्टेशन पर स्वामी आनंद विजय से व अन्य सैकड़ों संन्यासी-संन्यासिनों से भेंट। यहीं एक लड़का मिला जिसे मैं कभी भूल न सकूंगा। कितना सरल, कितना मधुर, कितना प्यारा। कैसी बड़ी-बड़ी विवेकानन्द जैसी आंखें। नाम था मनो। उम्र १६ साल। नवीं पास। प्लेट फार्म पर चाय बेचने का कार्य करता है। माँ, बाप, छोटे भाई, बहन, सब हैं, और सबका पालक वही है। उसकी आय पर सब निर्भर है। पर उसका चेहरा बोझिल या थका हुआ नहीं लगता। वह फूल सा प्रफुल्लित है। उसे देखकर उससे बात करके थके चेहरे भी विश्राम का अनुभव कर सकते हैं। हां तो इस लड़के को यह मालूम है कि भगवान श्री रजनीश ६ अप्रेल की प्रातः गुजरात मेल से आवेंगे। यह भी उन्हें 'रिसीव' करेगा। यह उनकी कई किताबें पढ़ चुका है। उसे यह भी मालूम है कि खाडिया चार रास्ता पर केन्द्र का कार्यालय है। मैं उसे बेन्च पर अपनी बगल में बैठाल लेता हूं और छाती से लगाता हुआ पूछता हूं, बेटे तू कल भगवान श्री को 'रिसीव' करने आएगा तो क्या उनके पास तक पहुंच पायेगा? वह कहता है बड़े-बड़े (आशय उम्र से) लोगों की भीड़ में मैं उन तक पहुंच पाऊं यह तो संभव नहीं होता पर वे देखने को दूर से भी मिल जाते हैं और मुझे इतने में भी बहुत आनंद मिलता है। मैं उसे चूम लेता हूं। और ख्याल आता है कि कुछ मूढ़ कहते हैं रजनीश धनवानों के लिए हैं। और यह गरीब लड़का। लेकिन वे कहेंगे लड़के की समझ कितनी। और मैं जानता हूं कि इस लड़के जितनी समझ के लिए उन्हें अभी कई जन्म लेने पड़ेंगे। मनो ने संन्यास लेने की इच्छा व्यक्त की। वह आबू चलना चाहता था। पर वह इतने खर्चे में पड़े, मैं नहीं चाहता था, न मेरी खुद की ऐसी स्थिति थी कि उसका व्यय वहन करता। मैंने उसे कहा कि १५।४ को वह प्लेट फार्म पर मिले। भगवान श्री से उसके

लिए नाम व माला ले आऊंगा। स्वामी नरेन्द्र बोधि सत्व भी बच्चे से प्रभावित थे और उन्होंने भी यही राय दिया।

तभी हमने देखा एक पिता अपने १७ वर्षीय पुत्र को गाड़ी में बैठाल रहा है। मैंने इन सज्जन को कई बार शिविरों में देखा है। मैं पास चला गया। वे तुरन्त पहचान गये और उन्होंने बच्चे से कहा ये स्वामी अगेह भारती हैं। मैंने पूछा बेटे को कहां भेज रहे हैं? उन्होंने बताया कि बड़ी कोशिश करने के बावजूद मुझे छुट्टी नहीं मिली। बेटे को अकेला ही भेज रहा हूं। शिविर का लाभ इन्हें भी मिलना चाहिए न! मेरे मन में पुन: राजस्थान सरकार का अनदेखा विधान सभा-भवन घूम गया। यह बाप अपने १७ वर्षीय बेटे को शिविर भेज रहा है, खुद को छुट्टी नहीं मिल पाई। वह बाप ५–६ शिविरों में सम्मिलित हो चुकने के बाद बच्चे को शिविर भेज रहा है। राज० सरकार की निगाह में वहां नग्नता व अश्लीलता दिखती है। भगवान ही जाने नग्नता व अश्लीलता वहां है या देखने वालों की अपनी आँखों में? क्योंकि कौन बाप होगा दुनिया में जो अपने १७ वर्ष के बेटे को ४० रुपये प्रवेश-शुल्क व १० दिनों का सैंकड़ों रुपया व्यय देकर खराब जगह भेजेगा? बेटे का नाम था शंकर जिसने आबू पहुंच कर संन्यास भी लिया। पिता का नाम था श्री कांति लाल नायक।

तत्तपश्चात् अहमदाबाद प्लेट फार्म पर सैकड़ों संन्यासी संन्यासिनों ने बहुत भयंकर कीर्तन किया। इतनी भीड़ प्लेट फार्म पर इकट्ठी हो गई कि क्या कहना। उतना भयंकर कीर्तन कम ही हो पाता है। लगता था समूचा अस्तित्व कीर्तन मय हो गया है। आकाश, तारे, पृथ्वी सब कीर्तन में सम्मिलित हैं। शायद राज० सरकार की संसद में चर्चा व माउण्ट पर ग्राउण्ड न मिलने की बात सुनकर और भी शक्ति जगी एवं कीर्तन तांडव-नृत्य हो गया।...ट्रेन में सबको सोने की जगह दिलाई मनो बेटे ने। ११ बजे रात भगवान श्री रजनीश की गगनभेदी जय के साथ ट्रेन अहमदाबाद से चली।

६.४.७३

प्रात: ७ बजे हम आबू रोड पहुंचे। संन्यासियों का मेला ही लगा है। संन्यासी कितने प्यारे लगते हैं, स्थल-स्थल पर खिले टेसू के फूल जैसे! बाहर निकलता हूं तो "जीवन जागृति केन्द्र आपका हार्दिक स्वागत करता है" बोर्ड दिखाई पड़ता है बस स्टैण्ड के पास। प्रबन्ध शायद अहमदाबाद जीवन जागृति केन्द्र की ओर से है पर वहां प्रबन्धक हैं आबू के ही स्वामी जगतराम व मारीशस के स्वामी कृष्णनाथ व प्रतापगढ़ के स्वामी योग

प्रताप भारती। चाय, काफी, दूध, बिस्कुट का मुफ्त इन्तजाम। बड़ा सराहनीय प्रबन्ध था यह। साथ ही फिर स्मरण आया कि हे प्रभु, तेरी अनुकम्पा अपार है। धन्य हैं वे जो इस प्रकार के इन्तजाम करते हैं और हम भी धन्य हैं जो ऐसे इन्तजामों को देखते व भोगते हैं जिनमें अपार प्रेम की झलक मिलती है।

हम बसों में बैठकर भजन कीर्तन करते माउन्ट पर पहुंचे। वहां बस स्टेशन पर सैकड़ों परिचित, अपरचित संन्यासी-संन्यासिनों ने नाच-नाचकर 'रजनीश आये आनंद लाये' गा-गाकर स्वागत किया। मुझे पुनः उन भाग्य हीनों का स्मरण आया जो प्रचारित कर रहे हैं कि रजनीश का माउन्ट शिविर काम पिपासा की तृप्ति हेतु लगता है। जयपुर से निकलने वाली एक पत्रिका में मैंने ऐसा पढ़ा था। लगता है इन बेचारों को पाप का भी ज्ञान नहीं है। जिसके मन में कभी पाप आया हो उसे पता होना चाहिए कि पाप का विचार रखने वाले इतने आनंदित, इतने प्रफुल्लित, हल्के-फुल्के हवा में उड़ते, नाचते, गाते नहीं हो सकते। पाप का तो विचार आते ही एक रुग्ण गम्भीरता घेर लेती है। इसका यह मतलब नहीं कि वे सब संत हैं। हैं तो वे पापी ही, पर गहरी मूर्छा में हैं। क्योंकि पाप का ख्याल आते ही मन खिन्न व गंभीर हो जाता है, भांति-भांति के विचार चलने लगते हैं, यह पता चलने के लिए भी थोड़ा होश, थोड़ी अमूर्छा तो अपेक्षित है ही। खैर...। कोई कुछ भी सोचने समझने को स्वतन्त्र है। और यह आनंद की ही बात है। परमात्मा का कार्य यों ही खुले आम-फिर भी एक रहस्य की भांति चलता है। यदि सारी दुनिया एक साथ जान ले कि फलां आदमी, आदमी नहीं, भगवान है तो भगवान का जीना मुश्किल कर दें। लोग गर्दन ही पकड़ लें कि हम इतनी तकलीफ में हैं तुमने कैसी दुनिया बनाई है। हमारी ये तकलीफें दूर करो...। और भगवान सत्य के खोजियों के लिए जो उपाय कर रहे हैं वह करने का समय ही उन्हें न मिल पाये।

वहा पहुंचकर पता चला कि स्काउट ग्राउण्ड जो तीन माह पहले से बुक कराया गया था, सर्किट हाउस जो भगवान श्री के आवास हेतु तीन माह पहले से बुक कराया गया था, दोनों ही राजस्थान सरकार ने कैंसिल कर दिया है। अतः अब बीकानेर हाउस के पैलेस होटल में व्यवस्था है भगवान श्री के ठहरने की भी व वहीं सुन्दर ग्राउण्ड है, उसमें भगवान श्री के प्रवचन होंगे व ध्यान के प्रयोग भी। इससे तात्कालिक अंतर जो पड़े उनमें एक यह भी है कि स्काउट ग्राउण्ड पर सैकड़ों टेण्ट गड़ चुके थे। इस

बार जीवन जागृति केन्द्र अहमदाबाद ने कैन्टीन की भी व्यवस्था वहां कर ली थी ताकि शिविरार्थियों को कम पैसे में भोजन उपलब्ध कराया जा सके। सारी व्यवस्था पूर्ण हो चुकी थी, वह सब हटानी पड़ी। शिविरार्थियों को माउण्ट की मंहगी होटलों की शरण लेनी पड़ी एवं तीन बार बीकानेर हाउस जाने व तीन बार वहां से आने के लिए बस का किराया तीन रुपया या टैक्सी का किराया २४ रुपया प्रतिदिन देना पड़ा।

पर सब इस बात पर एक मत थे कि यह ग्राउण्ड, स्काउट ग्राउण्ड से कहीं बेहतर है ध्यान के लिए।

माउण्ट पर भगवान श्री का स्वागत लगभग ११.३० बजे दिन देखने लायक था। देखते-देखते कोई खो जाय! फूलों-मालाओं का अंबार लगा है। सारी सड़क पर फूल बिछे हैं। भगवान श्री रजनीश की : जय' फिर कोई बोलता है राजस्थान सरकार की : जय। रजनीश आये, आनंद लाये गा गाकर जो प्रेमी गण नृत्य में डूबे तो भगवान श्री की कार को १५ मिनट तक रुकना पड़ा।

कुछ और खबरें

सुना गया व देखा भी गया कि राज० सरकार ने शिविरार्थियों की गतिविधियों का अध्ययन करने हेतु गजटेड क्लास की पुलिस, सी.आई डी. व मिलिटरी के जवान भी भेजे हैं। ऐसा समझा जाता है कि लगभग प्रत्येक में एकाध सी. आई. डी. ठहरी थी। सभी कार्यक्रमों में सम्मिलित होकर चीजों का अवलोकन करती थी। कहा जाता है कई सी. आई. डी. के मित्रों ने तो संन्यास लिया व माला पहनी ताकि संन्यासियों के मध्य रहकर, उनके बीच ध्यान व प्रवचन करने व सुनने के बहाने रहकर अधिक निकट से अध्ययन कर सकें। पर शिविर-समाप्ति तक नियुक्त सरकारी अधिकारियों व कर्मचारियों में से ७५ प्रतिशत रजनीश-भक्त हो गए। भगवान श्री की वाणी से निरंतर झरते अमृत को पी-पी वे भी पागल हो गए। इस्लाम की भाषा में मुरीद हो गए। कई स्वामी विजय भारती द्वारा लगाये गए भगवान श्री के चित्रों के स्टाल पर मुग्ध-भाव से चित्र देखते-पसंद करते रहे। कुछेक ने शायद खरीदा भी।

६ अप्रेल से शिविर था। कोई ८-९ अप्रेल तक माउण्ट आबू की यह हालत हो गई कि उसे माउण्ट आबू कहने के बजाय रजनीश नगर कहना अधिक सार्थक लगता। जिधर देखें उधर संन्यासी। बाहर के तो थे ही। माउण्ट आबू के तमाम संन्यासी। रिटायर्ड प्रथम श्रेणी सरकारी अधिकारी संन्यासी। बस चालक संन्यासी, कण्डक्टर संन्यासी। होटल-मालिक

संन्यासी, मैनेजर संन्यासी, बेयरा संन्यासी। पुलिस का सिपाही अपनी यूनीफार्म के ऊपर भगवान श्री रजनीश की माला पहने गौरव अनुभव करता, कृतार्थ अनुभव करता। कई टैक्सी चालक संन्यासी। यानी जिधर देखिए माउण्ट पर संन्यासी ही संन्यासी। और ऐसी तो कोई होटल या दूकान माउण्ट पर खोजी नहीं जा सकती, जिसमें भगवान श्री के विशाल चित्रों वाला १२ रुपये वाला केलेण्डर न टंगा हो। धन्य है प्रभो तुम्हारी लीला अपरम्पार है।

'बन्दे मातरम्' में मैं ठहरा हूं मा योग विभूति व स्वामी आनंद वेदान्त के साथ। नीचे के कमरों में इंजीनियरिंग के लगभग १०० छात्र ठहरे हैं। कालेज के अधिकारियों द्वारा भगवान रजनीश के कार्यक्रमों में जाने की अनुमति नहीं है। पर ये लड़के प्रवचन चाहे कभी चूक भी जायं, ध्यान में अवश्य सम्मिलित होते। एक दिन मैंने एक छात्र से पूछा, तुम अपने प्रोफेसर आदि के आदेश के प्रतिकूल ध्यान करने भग जाते हो, कभी चेक कर लिए गए और रेस्टीकेट कर दिए गए तो? वह कहने लगा, रेस्टीकेट कौन करेगा? रजनीश जी के कार्यक्रमों में जाने की अनुमति नहीं है यह तो सरकारी आदेश है, राज्य सरकार के कारण, यह आदेश लिखकर सूचना-पट पर टांग दिया गया है। लेकिन यह आदेश लिखकर टांगने वाले प्रोफेसर भी प्रवचन सुनने चले जाते हैं। कई संन्यास लेने की भी सोच रहे हैं।

बड़ोदा निवासी भगवान रजनीश प्रेमी श्री चन्द्रकान्त पटेल इस बार शिविर में पत्नी दोनों बच्चियों, दोनों बेटों व दोनों बहुओं के साथ आए हैं। न केवल आए हैं, बल्कि उन्होंने और उनकी पत्नी ने संन्यास भी लिया। यह खबर विशेष रूप से इसलिए लिख रहा हूं कि बीच में रजनीश जी को जब भगवान कहा जाने लगा तो चन्द्रकान्त जी लोगों के भगवान कहने के कारण विरोध करने लगे थे।

इस बार नियमित शिविरार्थियों की संख्या लगभग ७०० थी। विदेशी सदा से ज्यादा थे इस बार। कोई ढ़ाई-तीन सौ। इस शिविर में संन्यास में दीक्षित हुए लगभग २५० मित्र।

एक दिन चंडीगढ़ के श्री रघुवीर सिंह से भेंट हुई। चंडीगढ़ में कालेज आफ आर्चीटेक्ट के मैनेजर थे। वहां से स्तीफा देकर पैदल विश्व भ्रमण पर थे। २७ मई १९७० को पद यात्रा कन्याकुमारी से शुरू की थी। सेतु बंधु रामेश्वरम्, पांडुचेरी, तामिलनाडु, आंध्र, तेलंगाना, उड़ीसा, बिहार, आसाम, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा, हरियाना, पंजाब, सौराष्ट्र आदि की यात्रा समाप्त कर चुके थे। पड़ोसी

देशों सिक्किम, भूटान, नेपाल, बंगला देश की भी यात्रा समाप्त। बंगला देश की आजादी की लड़ाई के समय वहीं थे। अभी तक में ५० हजार किलोमीटर पैदल चल चुके हैं। ये मित्र जम्मू से कहीं के लिए (स्थान का नाम याद नहीं) प्रस्थित होने को थे कि उन्हें पता चला रजनीश जी का साधना-शिविर आबू में लग रहा है। ये न तो कभी प्रत्यक्ष दर्शन किए थे भगवान श्री का, न कोई प्रवचन ही सुने थे। कहने लगे मैंने सिर्फ उनके बारे में सुना था। पर नहीं जानता कैसे व क्यों जब मुझे जम्मू में पता चला कि रजनीश जी का शिविर आबू में लग रहा है तो मेरे भीतर ऐसा ख्याल आया कि मैं भी अटेण्ड करूं। फिर तो इस ख्याल ने इतना जोर पकड़ा कि मैंने आगे के कार्यक्रम स्थगित कर दिए और समय कम था अतः जहाज में फ्लाइ करके अहमदाबाद होता हुआ यहाँ आ पहुंचा। उन्होंने आगे कहा मैं प्रसन्न हूं कि मैं लेट नहीं हुआ। एकदम पहले प्रवचन से भगवान श्री को सुन रहा हूं। मैंने पूछा: विश्व-पद-यात्रा के बारे में क्या ख्याल रखते हैं? उन्होंने कहा अब तो भीतर की यात्रा पर भगवान श्री ने भेज दिया है। अब वे जो आज्ञा देंगे वही करूंगा। अपना कोई ख्याल नहीं रह गया है। कल संन्यास भी ले रहा हूं। मैंने कहा आप धन्य हैं प्रथम भेंट में ही समर्पण घटित हो गया। उन्होंने कहा: रजनीश जी इंडिया के नहीं हैं। इस दुनिया के ही नहीं हैं। चाहे कोई समर्पित हो या न हो। जो समर्पित होगा उसका लाभ होगा। जो समर्पित नहीं होगा, चूकेगा।

उन्होंने बड़े भाव से आगे बताया कि यहां आते-आते मेरे पास पैसों की कमी हो गई थी। पर भगवान श्री की कृपा से उनके प्रेमियों द्वारा यहां मुझे सारी सुविधाएं मिल गईं। मनुष्य इतना प्रेम में हो सकता है यह उनके प्रेमियों से मिलकर पता चला। और उनके स्वयं का प्रेम का तो अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। यहां मुझसे ४० रुपये प्रवेश शुल्क नहीं लिया गया। रहने की व्यवस्था मुफ्त कर दी गई। और भोजन भी पोरबन्दर वाले स्वामी अनंत स्वामी व स्वामी विवेक सागर जो मुफ्तिया सा भोजनालय चला रहे हैं ने मुझे विशेष आग्रह करके वहीं लेने को कहा, अतः भोजन भी वहां ले रहा हूं।

मैंने श्री रघुवीर सिंह से कहा: 'आपकी एक बात मुझे प्रीतिकर लगी कि मनुष्य इतना प्रेमपूर्ण हो सकता है यह इस शिविर में भगवान श्री के प्रेमियों से मिलकर पता चला। मैं भी भगवान श्री से मिलने को अब उतना उत्सुक नहीं रहता जितना उनके प्रेमियों को देखने में। इसलिए २.३० से ३.३० जब व्यक्तिगत मुलाकात का

समय रहता है, मैं उनसे मिलने न जाकर बाहर बैठ जाता हूं और भगवान से मिलकर बाहर आते हुए अनेकों के दर्शन कर आनंद में डूब जाता हूं। बड़े, बूढ़े, बच्चे, स्त्री-पुरुष देशी-विदेशी जो भी बाहर निकलते हैं आनंद में नाचते हुए। जैसे आसमान में उड़ रहे हों। उन्हीं के दर्शन करने में अकसर बाहर बैठता हूं। यह बात सुन उन्होंने बड़े प्रेम से मेरा हाथ पकड़कर दबा लिया।

श्री रघुवीरसिंह विश्व-भ्रमण के सभी कार्यक्रम रद्द करके विश्व नीड़ आजोल तीन माह की मौन साधना के लिए चले गए हैं और अब वे सँन्यासी हैं।

इस बार पोरबन्दर की एक संगीत पार्टी आई थी जितेन्द्र कुमार एण्ड पार्टी। इसे ले आने का श्रेय स्वामी अनन्त स्वामी व स्वामी विवेक सागर एवं रसिक भाई को है। इस पार्टी में एक मास्टर रुस्तम भाई कांगो बजाते थे। इनका कांगो कीर्तन के समय प्राण निकाल लेता था। और जर्मनी के स्वामी नारायणदास की बांसुरी तो साधकों को पागल ही बना देती थी। सच, हैरान होता है मन कि कृष्ण की बांसुरी कैसी रही होगी जब स्वामी नारायणदास की बांसुरी हमारे सुध-बुध खो देती है। कोई बांसुरी की सराहना करे तो माला में भगवान श्री का लाकेट उठाकर आकाश की ओर इशारा करते कि अब तो सब इन प्रभु की ही लीला है। अब तो ये ही बजाते हैं।... सच ही, विदेशियों के भक्ति-भाव देखते ही बनते थे।

एक संध्या प्रवचन के समय बहुत तेज तूफान आया जो कि ३० मिनट तक रहा। तूफान इतना भयंकर था कि प्रवचन करते भगवान श्री के ठीक ऊपर से गया, बिजली का तार बहुत बुरी तरह काँपता-हिलता। कई बार लगता कि तार टूट न जाय। मेरा मन तो सदा भयभीत था और प्रभु से इसी प्रार्थना में लीन था कि तार टूटे नहीं। उठकर किसी से कहने का साहस भी न हो कि तार की हालत चेक कर ली जाय। क्योंकि मुझे पता है भगवान श्री जब बोल रहे हों उस समय किसी का हिलना-डुलना तक नहीं पसद करते। पर आश्चर्य है कि भगवान श्री पूरी तन्मयता से बोलते रहे। कई बार तार इतना जोर से हिलता कि लगता अब टूटा, अब टूटा, पर भगवान श्री ने उस तार की ओर एक बार देखा भी नहीं। प्रबन्धकों से अपेक्षा है कि मंच के ऊपर जब भी ऐसा बिजली का तार गुजर रहा हो, उसकी मजबूती आदि को पहले ही अच्छी तरह 'चेक' कर लिया गया हो और वह इतना मजबूत हो व बंधा भी इस मजबूती से हो कि बड़े से बड़े तूफान से भी टूटने की स्थिति

न आये।

स्वामी वैराग्य अमृत कीर्तन मँडली के संन्यासी जगह-जगह खड़े सैनिक जैसे लगते जो कि बड़ा सुन्दर लगता। और भगवान के सैनिक तो हम हैं ही। बीकानेर हाउस के मुख्य गेट पर स्वामी आनंद समीर व स्वामी योग प्रताप भारती के दर्शन होते। तत्पश्चात कार-पार्किंग-स्थल पर मारीशस के स्वामी कृष्णनाथ के। प्रवचन-स्थल पर प्रवेश के समय द्वार पर मुसकराते हुए मिलते स्वामी वैराग्य अमृत व स्वामी निर्मल भारती। प्रवचन शुरू होने के बाद मुख्य द्वार आदि पर नियुक्त संन्यासी भी प्रवचन स्थल पर आ जाते और पूरे प्रवचन व ध्यान के समय उनका प्रवचन-स्थल के अगल-बगल सुरक्षा प्रहरी सा डोलते रहना या खड़े रहना बड़ा प्रीतिकर लगता।

एक बात इस शिविर में विशेष रूप से सराहनीय एवं स्तुत्य हुई। वह था पोरबन्दर के स्वामी अनन्त व स्वामी विवेक सागर व रसिक भाई का एक प्रीति-भोजनालय चलाना। इस भोजनालय में ढाई सौ से तीन सौ शिविरार्थी नित्य सुबह-शाम भोजन करते थे। यहां जो भी भोजन करते, उन्हें नित्य पैसे नहीं देने पड़ते थे। वे शिविर-समाप्ति पर जो उनकी इच्छा हो वह दे देवें। सच यह है कि वह प्रीति-भोजनालय ही था क्योंकि ज्यादा लोगों ने मुफ्त भोजन लिया। भोजन परोसने वाले स्वामी अनन्त, स्वामी विवेक सागर, रसिक भाई इन तीनों में किसकी स्तुति ज्यादा की जाय किसकी कम, तय करना मुश्किल है। इतने प्रेम से भोजन कराना सचमुच प्रभु-चमत्कार ही था। कहना न होगा कि पोरबन्दर के इन मित्रों ने भगवान श्री रजनीश का एक स्वप्न पूरा कर दिया है। भगवान श्री ने नारगोल-शिविर १९६८ में जी. जा. के. के कार्यकर्ताओं के मध्य बोलते हुए कहा था कि "**हम आशा करते हैं कि आने वाले एक-दो वर्षों में हम उन लोगों के लिए भी व्यवस्था जुटा सकेंगे जो शिविर में आना तो चाहते हैं पर उनके पास पैसे नहीं। हम शून्य वाले के लिए भी व्यवस्था कर सकेंगे।**" तो एक-दो साल में तो नहीं, पर पांच वर्षों बाद भगवान श्री के उस स्वप्न को पोरबन्दर के मित्रों ने साकार कर दिया। अतः इनकी जितनी भी सराहना की जाय, कम है। साथ ही अहमदाबाद के स्वामी सत्य बोधि सत्व को भी धन्यवाद देना पड़ेगा जिन्होंने इन मित्रों की हिम्मत बढ़ाई कि तुम प्रीति-भोजनालय चलाते जाओ। आखिरी दिन जो भी घाटा होगा बता देना, मैं अहमदाबाद केन्द्र की ओर से मिला दूंगा। और अंतिम दिन उन्होंने शायद २६०० या ३६०० रुपये मिलाकर घाटा पूरा भी किया।

आशा की जाती है कि प्रीति-भोजनालय का जो शुभारम्भ हुआ है उसकी परंपरा कायम रहेगी जिससे अनेक शून्य रुपये दे सकने वाले भी भगवान श्री रजनीश के शिविर का लाभ ले सकेंगे।

स्वामी सत्य बोधि सत्व, स्वामी आनंद मुनि, स्वामी शंकर भारती आदि मित्रों द्वारा लिये जाने वाले व्यवस्था संबंधी श्रम की जितनी भी प्रशंसा की जाय कम है। मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि उन्हें साधना में 'कन्सेशन' अवश्य मिले।

इस शिविर में भी एक क्षण बड़े सन्नाटे का गुजरा जब भगवान श्री के फूफा जी ने संन्यास ग्रहण किया। वह क्षण जिस समय भगवान श्री झुककर पैर छूते हैं, अवर्ण्य है। जाने कैसा अद्भुत सा लगता है। लगता है इतना जोर से चीखूं कि आसमान फट जाय।

इस शिविर में कई बार अगेह भारती को प्रथम आबू शिविर का स्मरण हो आया। कारण कि इस बार कई नये लोग आये थे जो कि वैसी ही बातें करते, जैसी प्रथम शिविर में पचीसों लोग किया करते थे। कहते—"यही है अगेह भारती। मैं तो इसे पढ़-पढ़कर समझता था कोई बूढ़ा, सफेद बाल व सफेद दाढ़ी वाला, गुरु-गम्भीर व्यक्तित्व होगा। यह तो हंसता-नाचता-उछलता है। एकदम बच्चों जैसी किलकारियां मारता है। इसे देखकर विश्वास नहीं होता कि यही है जो अगेह भारती के नाम से लिखता है।" और ये कहते-कहते दो-चार लोग उसे उठा लेते और लेकर भागते।

प्रेम-प्रसंग

साधु ईश्वर समर्पण प्रेमवश नित्य ही अपराह्न कीर्तन के बाद भगवान श्री द्वारा बम्बई में दिए गए प्रवचन का कोई न कोई विशेष अंश ८–१० मिनट का सुनाते। एक दिन मैंने देखा कि वे जो प्रसंग सुनाना चाहते थे वह अंश समाप्त हो गया है। उनकी उंगली 'नाब' के ऊपर जा भी चुकी है कि टेप बन्द कर दें। पर वे बंद नहीं कर पा रहे हैं। भगवान श्री आगे बोले जा रहे हैं। उनकी उंगली दबाने को होती है पर दबा नहीं पाती और प्रवचन चलता जाता है। इसी तरह कोई ७–८ मिनट बीत गए, तब जाकर—शायद हृदय को बहुत मजबूत किया होगा—वे टेप बंद कर पाते हैं। इस अदभुत प्रेम पर कई मित्रों की दृष्टि पड़ी व कुछ के आंसू भी झर पड़े।

एक दिन स्वामी योग प्रताप भारती ने कहा: भगवान श्री को इतना श्रम पड़ता है कि सचमुच मिलने-जुलने का काम कम कर देना चाहिए उन्हें।.. स्वामी योग प्रताप भारती ने ही एक दिन मुझे कहा

आपको मिलता बहुत है पर आप संभाल नहीं पाते, सब बता-बता कर खो देते हैं। दोनों बातें सच हैं। हृदय कभी गलत देखता भी नहीं।

एक दिन स्वामी धर्म विवेक से बातें हो रही थीं, अहमदाबाद में जब भगवान श्री पर एक बेचारे ने मुकदमा चलाया था। उस मुकदमे की ही चर्चा चल रही थी। स्वामी आनंद वेदान्त, नीमच ने कहा भगवान श्री को घर बुलाना हो तो उन पर मुकदमा चलाना चाहिए। (हंसी)

यों ही एक दिन बम्बई की मा धर्म पुष्पा ने कहा : मैं भगवान श्री के उपर मुकदमा चलाऊंगी, साथ देगा? मैंने कहा, किस बात का मुकदमा? वह कहने लगी, उन्होंने मेरा चैन छीना है, मेरी निद्रा छीनी है। उसके पति स्वामी आनन्द मुकेश पास ही खड़े थे। उन्होंने कहा : सो तो मेरा भी छीन लिया है। मैंने कहा : इन मामलों का न्याय भी भगवान की ही कचहरी में मिल सकेगा। ये कचहरियाँ तो तेरे इन वक्तव्यो का उलटा ही मतलब लगाएंगी। (हंसी)

प्रसंग तो स्मरण नहीं है। जाने क्या बात हो रही थी जब मैंने प्रेम के वशीभूत होकर कहा : कसूर हमारा नहीं, भगवान श्री का है। अहमदाबाद के स्वामी आनंद मुनि ने कहा : हमारा कसूर यह है कि हम इनके (भगवान श्री के) पास आए। (हंसी)

प्रेमियों की अनुभूतियां, उनके भाव किस तरह मिल जाते हैं इसके एकाध उदाहरण तो ऊपर मिल चुके हैं, स्वामी आनंद वेदान्त व मा धर्म पुष्पा की बातों से। स्वामी आनंद मुनि भी वही कह रहे हैं दूसरे शब्दों में। एक और ऐसे प्रसंग का मजा लीजिएगा। एक दिन जबलपुर के स्वामी प्रेम चैतन्य कहने लगे मैं भी भगवान श्री से जाकर कहता हूं कि मेरा सारा सामान गुम गया है (संदर्भ आनंदशिला शिविर से लौटते समय अगेह भारती का सामान गुमना, उसका भगवान श्री से कहना, उसके सामान की पूर्ति वुडलैण्ड में व बाद में वी० टी० स्टेशन पर गुमे सामान का भी मिल जाना)। यही बात मा आनंद मधु ने भी एक दिन कही—मैं भी भगवान श्री से इस बार कहूंगी कि मेरा सारा सामान गुम गया और यह कहकर लगभग नाच उठी। अगेह भारती आनंद में डूब जाने के सिवा इन पागल प्रेमियों को क्या कहता।

चमत्कार-चर्चा

एक दिन प्रवचन के दौरान भगवान श्री ने कहा : "मेरे पास लोग आते हैं, कहते हैं फलाँ के हाथ से ताबीज निकल आती है, विभूति निकल आती है। अब यह आदमी साधु से

नहीं, मदारी से प्रभावित होकर लौटा है।"

भगवान श्री ऐसा कहते हैं इसका मतलब यह नहीं कि उनके निकट चमत्कार नहीं घटित हो रहे हैं। सच बात यह है कि भगवान श्री रजनीश के निकट ही चमत्कार घटित हो रहे हैं। क्योंकि वे करते कुछ नहीं, बस स्वयं घटित होते रहते हैं। **जो करना पड़े, दिखाना पड़े वह चमत्कार नहीं है। जो स्वयं घटित हो, जिसे देखना पड़े, वह ही चमत्कार है।** ऐसे एकाध चमत्कारों की चर्चा मैं करना चाहूंगा। हर क्षण भगवान श्री के निकट चमत्कार घटित हो रहे हैं। पर मैं उनकी चर्चा करने से अब तक सप्रयास बचता रहा हूं। अब नहीं रहा जाता। अतः सुनें—

स्वामी आनंद विमल नाम के एक संन्यासी हैं जयपुर के। बी० ए० पार्ट सेकेंड की परीक्षा दी है इस साल। सदा प्रथम आता है। शिविर के पहले प्रवचन के बाद रात्रि १० बजे मुझे मिला यह लड़का। मैंने कहा : तुम तो शिविर में नहीं आने वाले थे, परीक्षा निकट है। उसने कहा : "रहा नहीं गया सो आ पहुंचा। लेकिन इस समय मेरी जेब मे केवल एक रुपया है। न रहने की सुविधा है न भोजन की। पैलेस होटल के मैनेजर से मिलने जा रहा हूं कि ६ दिन के लिए कोई काम दे दें। कैसा भी काम मैं कर सकता हूं। झाड़ू लगाने का काम भी दें तो स्वीकार है। बस ६ दिनों के भोजन की व्यवस्था होनी चाहिए। अक्टूबर के आबू शिविर में कैण्टीन वाले शर्मा जी ने शिविरार्थियों को भोजन परोसने सहायता करने का काम दे दिया था और ६ दिनों मेरे खाने की व्यवस्था कर दी थी। देखें इस बार क्या होता है।"

मैंने पूछा : "मानलो, कोई काम नहीं मिलता, तो रात क्या करोगे?"

उसने कहा : "रात तो मैं किसी वृक्ष के नीचे सोकर आनंद से बिता लूंगा।"

मैंने कहा : "तो ठीक है, मैं चलता हूं वर्ना बस न मिलेगी बन्देमातरम् जाने को। सुबह मिलना। अगर यहां कोई काम न मिला तो सुबह मेरे साथ चले चलना। जहां मैं ठहरा हूं वहीं तुम ठहरना, जहां मैं खाऊंगा वहीं तुम भी खाना।

मैं बस स्टैण्ड की ओर चला। मन ही मन सोच रहा था कि यह विश्व-विद्यालय का विद्यार्थी, सदा प्रथम श्रेणी में प्रथम आने वाला लड़का और झाड़ू भी लगाने का कार्य सहर्ष कर सकता है पर शिविर का लाभ उठाना चाहता है। हे प्यारे विमल! तुम धन्य हो! तुम जैसे लगनशील व संकल्पवान पुरुषों से ही इस जमीन को व भगवान को कुछ आशा हो सकती है। मैं तुम्हें आदर करता हूं।

(अगले अंक में समाप्त)

● *स्वामी अगेह भारती*, जबलपुर

★ फूट जाय अमृत का झरना ★

फूट जाय अमृत का झरना, चोट पड़े हल्की
ऐसा कुछ हो जाय, बदल जाये दुनियां कल की

जाने हो क्या बात, जमा जो—
सब कुछ बह जाये
लगे कौनसी आंच, पिघलकर—
सब कुछ रह जाये
कोई घटना घटे, आवरण हटे, मिले झलकी
बाकी युग-युग व्यर्थ, सही है बात उसी पल की

एक शब्द का फूल, मौन की—
गन्ध बिखर जाये
एक हंसी की धूप, जिन्दगी—
निखर-निखर जाये
जीवन हो संगीत तरंगित तन की वीणा में
कोई स्वर घायल कर जाये, झड़ी लगे जल की

वह कंकड़ है कहां, झील से
काई हट जाये
वह प्रभात क्षण कहां, सूर्य से—
कोहरा छंट जाये
ऐसी मचे पुकार, नींद से औचक जाग पड़ूं
कर दे कायाकल्प, क्रान्ति हो वह अन्तः तल की

कितना कुछ रिस रहा हृदय की
गहरी घाटी में
कितना कुछ कसमसा रहा है
तन की माटी में
इस तट पर मैं हूं, उस तट पर अकथ-अगोचर है
बस छलांग लग जाय, जोहता बाट उसी पल की

• *स्वामी योग प्रीतम*
भीलवाड़ा, राजस्थान

भगवान रजनीश के अमृत सान्निध्य में

ध्यान साधना शिविर

स्थल : पैलेस हॉटल (बीकानेर हाउस)
माउण्ट आबू, (राजस्थान)

दिनांक—८ जुलाई ७३ से १६ जुलाई ७३ तक

कार्यक्रम : सुबह एवं रात्रि प्रवचन, सक्रिय ध्यान, कीर्तन ध्यान, त्राटक ध्यान एवं प्रभु कृपा चिकित्सा ।

विशेष—(१) प्रवचन अंग्रेजी में होंगे ।
(२) इस शिविर में फ्री प्रवेश नहीं दिया जाएगा ।

प्रवेश शुल्क—प्रति साधक २०० रु०, या जो असमर्थ हैं—१०० रु०

अन्य समस्त जानकारियों के लिए संयोजक से संपर्क करें :

- जीवन जागृति केन्द्र
  ए-१, वुडलैण्डस्, पेडर रोड
  बम्बई–२६
  फोन : ३८११५९

- जीवन जागृति केन्द्र
  भवानी चेम्बर्स,
  आश्रम रोड अहमदाबाद–९
  फोन : ७७५४७, ७७५७१

युक्रांद

अप्रैल १९७३